(1) मांगु शब्द अनेकार्थक है एवं
आश्वासन दाता है कि मिल जायेगा।
(2) मांगु नृप अर्थात अपने लिये राज्य
मांग लो ताकि कोई बाधा न कोई चिन्ता
पुत्र-स्नेह में बाधक न हो पावे - यद्यपि
मनु जी ने राज्य मांगा ही नहीं फिर भी
वरदान समाप्ति के बाद अब तक भुआल
हो तो सब पुत्र रूप में मैं तुम्हें प्राप्त हूँगा॥
(3) मांगु मोहि अनुमति है राजा मुझे ही
मांग लो - इशारा है कि पुत्र रूप में मैं तुम्हें
मिलूंगा। अथवा मुझे ले मांगलो
(4) मांगु नृप मोहि अर्थात नृप रूप से ही
मुझे मांगलो मुझे राजा देखकर
तुम्हें सुख मिलेगा - राजा होता है न
चाहिये अर्थात् उपस्थित कर दूंगा - मनु
जी ने नृप रूप में सुत नहीं मांगा यद्यपि
दशरथ जी ने श्रीराम को राज्य देना
चाहते था जोकि कैकेई ने पूरा नहीं किया
यद्यपि मनु ने यह सब कुछ नहीं मांगा
किन्तु प्रभु ने सब कुछ ही दिया॥

दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहहुँ सतिभाऊ। चाहहुँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराव॥ (1-149)

प्रभु की ओर से इतना आश्वासन पूरा आदेश पाने पर अविलम्ब ब्रह्माण्ड के अधिपति को स्पष्टतया पुत्र रूप में मांगने की धृष्टता नहीं करके, एवं सद्विचार करके कि परब्रह्म प्रभु के समान तो कोई है ही नहीं, चतुरता किया कर मनु निवेदन किया कि प्रभु मैं आपसे सच्चा भाव कहता हूँ कि मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ आपसे क्या दुराव छिपाव करूँ। दूसरा भी ऐसा ही - महादानी के पास कहाँ कमी है तुलसी कहते हैं उनके निकल नाथ और प्रभु कहते हैं ऐसा ही कि मेरे सरीखा त्रिलोकी में दूसरा कोई है ही नहीं। अतः मैं स्वयं तुम्हारा पुत्र बनूँगा। अतः पुत्र सहित

खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥ (१-१५०) जब राजा ने स्वभगवान पुत्र मांगा तब प्रभु ने एवमस्तु कह दिया था यानि मेरे जैसा पुत्र मिलेगा फिर स्वयं पुत्र होने का वचन देते हैं अतः दो वर हो जाते। सो क्या सत्यसंध प्रभु का पहला 'एवमस्तु' खाली जा सकता है? नहीं। अतः भरतलाल जी पुत्र बनकर आये। वास्तव रूप से मनु ने भगवान पुत्र मांगा अतः वास्तविक रूप में श्रीराम जी हैं। भरत लाल हैं क्या हो सकता है कि मैंने करना प्रसंगवश है यह प्रसंग। श्री राम चरित मानस के बालकाण्ड में पत्नियों को पुरुष से बड़ा कहा है पर चित्रकूट के पद पर वनवासी स्त्रियों को पुरुष से बड़ा नहीं कहा क्यों कि तापस वेश (श्री राम का) और राजस वेश (भरत लाल का) भी इस समानता को बाधित नहीं हो सकी। इस रामायणकार का क्या कहना।

(1322)

जौं बरु नाथ चतुर नृप मागा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा॥ (१-१५०)

मनु जी प्रभु को पुत्र रूप से वर मांगते उस समय रानी हाथ जोड़े खड़ी थीं। इसके बाद प्रभु ने रानी को लक्ष्य करके कहा कि देवी! तुम भी अपनी रुचि के अनुसार वर मांग लो। प्रभु को पुत्र रूप से मांगने से राजा और रानी [illegible] समझते हैं अतः रानी कहती हैं कि प्रभो! राजा ने जो वर मांगा है वह मुझे भी अति प्रिय लगता है यद्यपि मुझमें भी यही वर वांछित है और आप मेरी ही भांति राजा को पुत्र रूप में प्राप्त होने की कृपा करें। इस अर्धाली में 'चतुर' शब्द बड़ा ही महत्वपूर्ण है - वर मांगने में यह नहीं कहा कि आप हमारे सदा बने रहें इससे भक्ति की न्यूनता होती। अतः मांगा कि हमारे पुत्र हो। इससे सदा हम लोग आपके [illegible] बने रहेंगे;

जिसे शिव आदि मन ते देखते हैं उसे पुत्र रूप में गोद में लिया ताकि उसके बाद जन्मभर देखते रहें। पुत्र रूप में प्रभु की पुष्टि में वात्सल्य रस की परिपुष्टि तब है। इस तरह से प्रभु और शतरूपा दोनों का कल्याण होगा। और दोनों का दाम्पत्य सम्बन्ध बना रहेगा। इस में 'मोहि अतिप्रिय लागा' कह कर पति के वचन को मान्यता देते हुए अपने लिये भी पुत्र रूप माँग लिया। राजा को तो निरंतर दर्शन के आनंद में अन्तर भी पड़ेगा किन्तु पिता की अपेक्षा संतान के सुख को माता को अधिक मिलता है, रूप के दर्शन तो दोनों ही होंगे और छूने भी, लालन पालन, गोद में खिलाने आदि रस का सुख माता को ही अधिक मिला।

~~अपि चतुर रानी विचार रही है राजा से मैं प्रभु को पुत्र रूप में मांगकर अपनी अपूर्ति के~~

प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहि सोहाई॥ अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई॥ जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥ सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु। सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु॥

~~अपने~~ आप से ही पुत्र हैं अन्य किसी रानी के नहीं ऐसा वर मांगने के बाद रानी सोचती कि भगवान के पिता का अपना पुत्र बनाना और भगवान के स्वामी को पुत्र रूप से अपना सेवक बनाना बड़ी भारी धृष्टता है, उस ब्रह्म व्यापक ब्रह्म को पुत्र रूप से बोध करना और सर्व व्यापी को एक देशीय बनाना कम धृष्टता नहीं है अतः कहती है जिस प्रकार भक्त

क्या हित हो सकता हित का आपको वही सुहाता
है अतः इच्छा करें। फिर आपने चतुर रानी
ने सोचा कि भगवान के पुत्र होने पर
भी यदि भक्ति नहीं मिली तो निश्चय कल्याण
नहीं है एवं प्रभु को पुत्र रूप में प्राप्त करने में
भिन्न गृह वासों में न ही पड़ने की आशंका
है एक ही सांस से दो दो बातों को अलग
अलग हो समझाती हैं और कहती हैं प्रभु
आपके हस्त राजा के पुत्र कहे गये
वचन से आपको पुत्र रूप में प्राप्त करना
तो प्रभावित हो चुका। भक्ति कृपा-
साध्य ही है क्रिया-साध्य नहीं है अतः
हे प्रभु आप मुझे अपना निजी
भक्त बना लें एवं जब आप पुत्र रूप
में पधारें तब आपकी वात्सल्य लीला
के सुख लूटने तक भी मेरी ये चाह हो
वाली अनुराग बनी रहे एवं मुझे भाव
बना रहे ऐसी कृपा करें मैं आपकी
अनन्य भक्ति भक्त बनी रहूं। मेरी जीवन
चर्या भी आपके निजी भक्तों (सन्तों)

श्री हो

① सोइ सुख - "मैं गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह। ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह" (७-४६) और कौशल्या रूप में मिला भी 'सोइ सुख ते सत कोटि गुन पावहिं मातु अनंदु' (१-३५०)

② सोइ गति - 'तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं' (२-१३०) और मिला भी "सो प्रेम बिबस सब माता। चलहिं न चरन सिथिल भए गाता" (१-३४८)

③ सोइ भगति - 'अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव। जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव' (७-८४) और मिली भी" मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना। ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद। सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद' (१-१९८)

④ सोइ निज चरन सनेहू - 'राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू' (१-१७) और मिला भी

"प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न
जान। सुत सनेह बस माता बालचरित कर
गान।। (१-२००) "कौसल्यादि राम महतारी।
प्रेम बिबस तन दसा बिसारी।। (१-३४५)
रज पुलकित मुख वचन न आवा। नयन
मूदि चरननि सिरु नावा।। (१-२०२)
(५) सौन्दर्य विवेक — 'जड़ चेतन गुन दोष मय
बिस्व कीन्ह करतार। संत हंस गुन
गहहिं पय परिहरि बारि बिकार।' (१-६)
और फिर भी " सुजान जब ध्याना प्रभु
मुसुकाना।। (१-१२४) और फिर भी "कौसल्या
कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख
छति लाहू।। ईस रजाइ सीस सबही के।
उतपति थिति लय बिषहु अमी के।" रघु
पुत्र है भी परमेश्वर आन रखा यह
अलौकिक विवेक है" अस बिचारि जस
आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई।
(२-६०)
(६) सौन्दर्य दर्शन — मेरा जीवन सौन्दर्य का स
ही रहे यानि आप हमारे पुत्र सो है।

(1328)

पर हमारे हृदय में सेवक-सेव्य-भाव बना रहे। भजन को प्रभु ने माधुर्य का प्रतिबंध दिया। मुझे माधुर्य के साथ साथ प्रभु के ऐश्वर्य का अनुभव दिये थे। किन्तु यही - कौसल्या जी का सारा जीवन निज भक्ति की रहनी ही तो है। "प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान।" (बा- 200) जीवित अवस्था में प्रत्यक्ष प्राप्ति भक्ति का चिर साहचर्य और अन्त में भी निजी भक्ति की प्राप्ति। यद्यपि मैं इन सब को पाने के योग्य नहीं हूँ किन्तु आप कृपा करके दें।

ii जो ~~कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्ह अनुग्रह~~

iii जौ कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं॥ मातु विवेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें (विपद)

मनुजी को सिर्फ "एवमस्तु" ही कहा
था न जिसका मांडन इतना ही किया
यहाँ ही मन उठते हैं आनन्दघन प्रभु
आपके अंश की सृष्टि एवं उत्पत्ति प्रभु।
पर रचना पर अधीर न रहते हैं और
तुमने मांडना रचा, सो किया ही स्वयं जो
ज्ञान के दर्शन हैं और मुझसे सोचे
मैं चतुर इतना नहीं हूँ सकती कि मैं समझ सकूँ
दिव्य स्थिति प्रकट का अवसर सत
करके अपु लौकिक विवेक भी वे
अपने गृह में तू कहे प्राप्त होगा अति
पुत्र रूप में वात्सल्य का माधुर्य सुख
एवं मेरे ~~[illegible]~~ ऐश्वर्य का दर्शन अपार
अलौकिक ध्यान आदि। हो सकता भी
ऐसा ही है कौशल्याजी को पहले
चतुर्भुज रूप में अपने को चाहे अद्भुत
धारण किये दर्शन देते हैं "निज
आयुध भुज चारी" (१-१९२) कौशल्याजी
को ध्यान होता है। "अखिलाँड कहती है
ब्रह्मांड जिसके रोम रोम में बसे हैं वह

(1330)

ब्रह्माण्ड नायक होते हुए भी वे रहे यदि किसी
भी धीर मति की माता को अपहिलाई
चंचल कर देता है (१-१९२) इस ध्यान के
साथ प्रभु मुस्कराते हैं ~~[illegible]~~ कौशल्या
जी की ध्यान बुद्धि को चंचल कर
देते हैं कारण प्रभु को अद्भुत चरित्र लीलाएं
करनी हैं जिससे यह ध्यान बाधक हो
जायगा अतः जिस प्रकार पुत्र का प्रेम
~~[illegible]~~ पुत्र मिले वह सात्विक है सुनाथी और
कौशल्या जी निवेदन करती हैं कि प्रभो
आप तो शिशु रूप होकर शिशु लीला का
आनंद प्रदान करें और यह सुनकर प्रभु
शिशु बन जाते हैं "(उपजा जब ज्ञाना प्रभु
मुसुकाना चरित बहुबिधि कीन्ह चहै।
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु
तात यह रूपा। कीजै सिसुलीला अति
प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ
बालक सुरभूपा। (१-१९२ छं.) कह देते
निश्चय प्रभु कहते हैं (अनुग्रह

से अलौकिक ज्ञान नहीं रहेगा
क्योंकि जब लीला करने के लिये प्राकट्य हुये के
होगा अलौकिक काल के लिये यह ज्ञान तो
फेर भी हुआ। जब माता ने इहाँ वहाँ दुई
बालक देखा तब श्री प्रभु ने ~~मुस्का~~
मुस्कुराकर विराट रूप का दर्शन कराया
माता ने अलौकिक हो प्रभु के बैठ कर श्री
चरणों में प्रणाम किया इस तरह
कौसल्या जी को दो बार अपने ऐश्वर्य के
दर्शन जगन्निवास प्रभु ने कराया किन्तु
पिता दशरथ को केवल पुत्र रूप से ही रहा
फिर भी प्रभु यह भेद गुप्त रखने का
ही उपदेश देते हैं माता को।

"सुत बिलोकि कर तब पद रति होऊ। मोहि
बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ॥ मनि बिनु
फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन
तिमि तुम्हहि अधीना॥ (अ – १५१)

मनु महाराज ने व शतरूपा रानी
ने प्रभु को पुत्र रूप के साथ अनन्य
भक्ति और अलौकिक ज्ञान नि

कुछ माँग लिया, तब सोचते हैं वर
माँगते में कुछ चूक हो गयी। रघुनाथ
हाथ जोड़कर फिर निवेदन करते कहीं
ऐसा नहीं हो जाय कि जीव की अल्प-
ज्ञता के कारण फिर भी रह जाय
मेरा प्रेम प्रभु में केन्द्रित हो जाय कि
हे प्रभो आप में मेरा पुत्र भाव से
ही प्रेम बना रहे सदा सच्चा प्रेम
बना रहे। इसबात की मुझे कोई
परवाह नहीं है कि ईश्वर को पाकर
भी राजा हूँ ईश्वर भाव की भावना नहीं
है कितना बड़ा मूढ़ है। मैं मूढ़ कहाता
रहूँ पर आप के श्री चरणों में अनुरा-
ग बना रहे यही अभिलाषा है। मनु जी के
प्रेम को दो दृष्टान्त देते हैं (1) सर्प का
मणि पर प्रेम जहाँ सर्प मणि छूट
जाने पर छटपटाता तो अवश्य है
पर मरता नहीं यह दशरथ के जीवन
में चरितार्थ है वन बिछुड़ गये श्री रामके
चले जाने के उस समय व्याकुल तो बहुत

होते हैं पर मरते नहीं और दूर के
सहारे रहें। "सुनु हियँ लागु दुसह दुख
होहि। मृतक सरीर प्रान जनु भोरें॥(२-३०
(२) जल बिहीन मछली का — ये वहाँ जल
के विरह में मीन मर जाती है — यह वन
यात्रा में चरितार्थ होता है "राम राम कहि
राम कहि राम राम कहि राम। तनु परिहरि
रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम" (२-१५५
मणि सर्प के भीतर रहती है और साँप अपनी
इच्छा से मणि का वियोग सह सकता है
जैसे ही अपनी इच्छा से दशरथ ने
बिछुरत हि तु पतंग रहैं बियोगा से हो
नहीं"। और मीन से जल बाहर रहता है
किन्तु जल के वियोग से मछली मर जाती है
बलात् कोई भी उनको अलग कर देता है
इसी प्रकार कैकेयी ने बलात् श्रीराम का
वियोग करा दिया। फलस्वरूप दशरथ
मर गये। इस प्रकार बाहर और भीतर
दोनों अवस्था में प्रभु चरणों के प्रीति
को भी हनु महाराज ने तीन बार प्रभु

(1334)

से अचना की और तीनों ही बार प्रभु के चरणों में प्रणाम किया" देखहिं हम सो रूप भरि लोचन" "चाहउँ तुम्हहि समान सुत" "सुत बिषइक तव पद रति होऊ" तीनों ही बार प्रभु ने उनकी इच्छा पूरी की पहली बार सीताजी सहित प्रकट दर्शन देकर और दो बार 'एवमस्तु' कह कर। तीन बार पदवंदन में क्रम से वचन, मनोयोग करते हैं
"बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी" ये वचन हैं "सुत बिषइक तव पद रति होऊ" में मन है "प्रभु वह भाँति चरन गहि रहेउ" में तन अर्पण करते हैं। पूर्व मनुजी की पहले दर्शन की इच्छा हुई फिर प्रभु की रूप माधुरी देख कर ~~देख~~ फिर सदृश अर्थात पुत्र रूप में प्राप्त करने की और उनके सत्य प्रेम की। "राम देत नहिं बनइ गोसाईं" (१-२०५)
"रामु लखनु उर कर बर चीठी। रहि गए कहत न खाटी मीठी॥ पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। सुनि सनेह साने बचन बाची

बहुरि नरेस॥ (१-२४०) "भैया कहहु कुसल
दोउ बारे। पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ।
प्रेम बिबस पुनि पुनि कह राऊ॥ (१-२४१)
"प्रभु कहि मैं बिसराऊँ रामचरन चितु
लाइ (१-३४५) "परम प्रेम मन पुलक
सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा॥
जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरें गृह
आवा प्रभु सोई" (१-१९३) "राम राम
रटि बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख
बिहंग बेहालू (२-३७) ये सब अर्धालियें
दसरथ की मानसिक स्थिति यानि
यह ध्यान कि श्रीराम ही परमब्रह्म हैं
जिन्होंने पूर्वजन्म में पुत्र बनने का वरदिया
और प्रभु के चरणों में अनन्य भाव से
अनुरक्त मन एवं साथ साथ पुत्र के प्रति
राजा का वात्सल्य भाव और प्रेम बताती
हैं। इतना ही नहीं मृत्यु के बाद
स्वर्गलोक में भी दशरथ का श्रीराम के
प्रति पुत्र-भाव ही बना रह जाता है
और रावण-वध के बाद लंका में

युद्ध-भूमि में दशरथ हैं प्रेमाश्रु नयनों में भरे हुए हैं और सफल मनोरथा को प्रणाम करने पर आशीर्वाद देते हैं उनका शरीर पुलकायमान हो रहा है "तेहि अवसर दशरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए॥ अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा। आसिरबाद पिताँ तब दीन्हा॥ नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी।" (६-११२) और अन्त में प्रभु ने दृढ़ ज्ञान दिया तब ईश्वर जानके बार बार प्रणाम करके स्वर्गलोक चले गये "चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना॥ बार बार करि प्रभुहि प्रनामा। दसरथ हरषि गए सुरधामा॥" (६-११२) यह है भक्ति का अपने छूट चले रहते हुए प्रभु के श्री चरणों में दृढ़ अनुराग की।

मनु और शतरूपा को प्रभु ने माता और पिता उसी समय जान कर इसी प्रकार दोनों को सम्बोधन किया ताकि उनका सँकोच दूर हो जाय

क्यों कि अवतार लेने में अभी कुछ देर
है। यह तो समय पर ही होगा।
"भानु विवेक अलौकिक सोई" (१-१५१
"रहै नाहि भोग बिलास लालस गरैं कछु
काल पुनि" (७-१५१)
एक ही इष्ट अनन्यता को हृदय
से धारण किये हुए मनु शतरूपा ने एक ही
प्रकार की और एक ही अवधि तक घोर
तप किया। निर्गुण ब्रह्म का प्रगाढ़
सगुण रूप देखहि एवं उन्हें पुत्र रूप में
प्राप्त करने की रुचि तो दोनों की
एक ही है किन्तु मनु अपनी तरफ
से प्रभु के प्रति वात्सल्य प्रेम चाहते हैं
और रुग वृत्ति छूट के रख कर अपनी ओर
पुत्र ही सम्पत्ति रहना चाहते हैं
जबकि शतरूपा प्रभु की ओर से
वात्सल्य प्रेम चाहते हुए प्रभु को
जगत्पिता परमेश्वर ही समझते
रहने का अलौकिक ज्ञान भी चाहती
है जो कि अति दुर्लभ है। यहाँ तक तो
वरयाचना और वरदान प्रसंग हुआ

"अब तुम्ह मम अनुसासन मानी।
बसहु जाइ सुरपति रजधानी॥ तहँ
करि भोग बिसाल ....." (बा. १५१)

इसका दुल्लिखित कर देने पर भी महादानी प्रभु को सन्तोष नहीं हुआ और विचारते हैं कि जो माँगा सो तो दे दिया अपनी तरफ से भी कुछ दे दूँ अतः अनुशासन देते हैं कि स्वर्गलोक में जाकर इन्द्र की राजधानी में जाकर निवास करो और विशाल भोगों का आनन्द लो ताकि प्रभु के इन माता पिता की [illegible] इन्द्र आदि के द्वारा सेवा का सुअवसर मिले।
"होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत (बा. १५१) कहीं अनन्तता के विलम्बन के कारण ये दोनों अधीर न हो जाँय इनको प्रभु का नियोग असह्य है स्वर्ग में जाकर देवताओं की तरह फुरसतियु तक वहाँ नहीं रहना पड़े इसलिये प्रभु ने कहा कछु काल लै वहाँ रहो तुम्हारे इस शरीर त्याग होने शरीर के पुत्र नहीं

होऊँगा। इसलिये फिर अयोध्या में दशरथ
पत्नी और कौशल्या रानी बनोगी तब मैं
तुम लोग मुझे पुत्र रूप में प्राप्त करोगे।
इस तरह देश और काल दोनों ही
निश्चित कर दिया ताकि दोनों अधीर न
रहें।

"इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट
निकेत तुम्हारें॥ अंसन्ह सहित देह
धरि ताता। करिहउँ चरित भगत
सुखदाता॥ आदिसक्ति जेहिं जग
उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह
माया॥" (१-१५२)

देश-काल निश्चित करके बाद अब
प्रभु अपने अवतार का ब्योरेवार
वर्णन कर रहे हैं। मैं इच्छामय सुंदर
मनुष्य देह धारण करके तुम्हारे घर
में ही प्रकट होऊँगा (अतः वहीं लुंगा
प्रकट होऊँगा "भए प्रगट कृपाला।")
मेरा रूप केवल देखने में ही नराकार
होगा पर भीतर-बाहर शुद्ध ईश्वर-तत्व

1340

ही इच्छा जिसकी जैसी इच्छा होती
उसे उसी रूप में दिखता था यह जानकर
भी वे धनुष बाण में उपस्थित
होता है। मनुष्य शरीर की बाल,
कुमार, किशोर, युवा अवस्थाओं की
अवस्थाओं की लीलाएँ भी करते थे।
तुमने तो सिर्फ मुझे ही पुत्र रूप
में मांगा है पर मैं इससे भी बहुत
ज्यादा तुम्हें दूंगा - अपने अंशों
सहित तुम्हारे पुत्र बनूंगा
(जैसे आयुध - वाहन और अलग
नहीं होते अतः पृथ्वी को धारण
करने वाले शेषनाग लक्ष्मण,
पृथ्वी का भरण पोषण करने
वाले पांचजन्य शंख भरत और
शत्रुओं का नाश करने वाले
सुदर्शन चक्र शत्रुघ्न हुए
मा. पी. भाग २, ९९ दो० ११ एवं पृ २०)
इतना ही नहीं आदिशक्ति
सीता भी पुत्री नहीं तो पुत्र-

वधू रूप में तुम्हें जाना होगा। अतः
यह तुम्हारा नहीं दूसरे के घर की अमानत
होगी। इसी ~~अवसर पर~~ समय एक
विप्र हरिदेव या वामनवर्ती एवं उसकी
पत्नि ने भी इस अपूर्व मिलन से समझ
ली कि अपनी शक्ति हमारी सुता
है। घर पर वृद्ध दास हमारे
जा जाती है। भा. दी. सागर पृष्ठ 680
इस तरह दोनों सरकारों के वात्सल्यरस
भीगा दोनों यानि दशरथ और
जनक हुए — जनक सुकृत मूरति वैदेही।
दशरथ सुकृत राम धरें देही।। ~~काहु न इन्ह~~
~~समान फल लाधे~~।। इन्ह सम काहु न शिव
अवराधे। काहु न इन्ह समान फल लाधे।
इन्ह सम कोउ न भयउ जग माहीं। है नहिं
कतहूँ होनेउ नाहीं।। (1-310) यह है भावना
मिथिला नर नारियों की। अब महाराज जनक
पुनश्च। की मनःस्थिति देखी जाय — प्रथम दर्शन
के समय अपूर्व राई है॥ "मूरति मधुर
मनोहर देखी। भयउ विदेहु विदेहु

बिसेषी।। "प्रेम मगन मनु जानि नृपु
करि बिबेकु धरि धीर।(१-२१५)" "इन्हहि
बिलोकत अति अनुरागा। बरबस
ब्रह्मसुखहि मन त्यागा"(१-२१६) "सुंदर
सदनु सुखद सब काला। तहाँ बासु लै
दीन्ह भुआला"(१-२१७) "सहित बिदेह
बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न
जाति बखानी"(१-२४३) "सब मंचन्ह
तें मंचु एक सुंदर बिसद बिसाल। मुनि
समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल।।
(१-२४४) यानि महाराज जनक एवं
सुनयना जी को पूर्वजन्म के वर याचना
की स्मृति है तभी से धनु थेरिकर
जामाता बनने के बदले ही उन्हें श्री
रामजा जामाता स्वरूप में देख रहे हैं एवं
वात्सल्य रस उमड़ पड़ा है।" तुम्ह
परिपूरन काम जान सिरोमनि भावप्रिय।
जन गुन गाहक राम दोष दलन
करुनायतन।।(१-३३६)" व्यापकु ब्रह्मु

अलखु अविनासी। चिदानंदु निरगुन गुनरासी॥ नयन विषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल।" (१-३४१) भाव भावना प्रकाशित करती है कि दोनों दम्पत्ति श्री राम का परब्रह्म होना मानते हैं। अब जरा पुष्पवाटिका में आकर श्री राम और सीता की परस्पर के प्रति भावना देखी जाय "प्रीति पुरातन लखइ न कोई।" (१-२३०) "सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥ मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी।" (१-२३१) यानि परब्रह्म श्री राम और सीता नर देह में अपने को पति पत्नि मानते हैं दोनों देखने मात्र को दो रूप हैं पर वास्तव में एक ही तत्व हैं इनमें संयोग-वियोग कभी नहीं होता इनका नित्य-संयोग है।

(1354)

धन्य हैं महादानी कृपासिंधु भगवान के अनुग्रह की महत्ता कि जब मैंने तो सिर्फ प्रभु को स्पर्श मांगा था किन्तु प्रभु ने अमूल्य दानों की ढेर लगा दी।

जय हो जय भगवान और भागवतों की जय जय हो।

श्री राम जय राम जय जय राम

द्वादशाक्षर मंत्र

15/11/81 (भा. टी. बाल. भाग 2 पृ. 630-31)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्री नारदजी ने ध्रुवजी को यह मंत्र बताया था। वासुदेव का अर्थ है जो सब विश्व में बसा हुआ है और जिसमें सारे विश्व का निवास है। ये ही संसार के रचयिता और रक्षक हैं इसलिये वे वासुदेव कहलाते हैं। वह श्री रामचन्द्रजी ही हैं। 'वासुदेवं' श्री रामचन्द्रजी के प्रकाश को कहते हैं। द्वादशाक्षर मंत्र रामभक्त का अभीष्ट है।

श्री सीतारामं वन्दे श्री राजारामं

आनन्द रामायण के मनोहर काण्ड सर्ग 14 में दिये गये राममंत्रों में द्वादशाक्षर मंत्र एक यही है और इस मंत्र का माहात्म्य अपने लिखा है॥

(348) मानस मणि
नवम्बर 1982 के पृष्ठ
320 से उद्धृत

(क्र.सं. 38)

भरत और लक्ष्मण

23/11/81
मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के अवतार का एक हेतु धर्म एवं समाज की मर्यादा स्थापना करना भी है। विभिन्न प्रकार के भक्तों के मार्ग प्रदर्शन के लिये प्रभु के अंश भरत लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न भी अवतरित हुए। इनमें शत्रुघ्न जी भक्तों की सेवा धर्म का आदर्श उपस्थित करते हैं भागवत भरत की सेवा में अनुरक्त रहकर।

भरत और लक्ष्मण दोनों ही का श्री राम के प्रति भायप (भ्रातृप्रेम) या यों कहा जाय प्रभु के प्रति भक्ति का अनुराग अपना ही उत्कृष्टता है एवं त्याग भी दोनों ही का चरम सीमा का है अर्थात महान आदर्शमय है। दोनों ही श्रीराम-प्रेम में एक दूसरे से बढ़कर

पड़े हुए हैं। किसी भी एक को दूसरे से कम या अधिक कहना उचित नहीं है।

जननी जिस राज्य-सत्ता को वैधव्य तक सह कर पति से वरदान में प्राप्त करती हैं, उसके इकलौते पुत्र के लिये, उसे वही पुत्र भरत भाई के सम्मान ठुकरा कर भाई को मनाने चित्रकूट पैदल ही चल देते हैं। इधर ज्यों ही श्रीराम के लिये वनवास के वरदान की बात सुन पाये, भर लक्ष्मण अधीर हो उठे राम के समक्ष पहुँच कर बिलखते हुए साथ ले जाने के लिये अति दीनता के अनुनय विनय कर रहे हैं। सब कुछ की सफलता सहर्ष वन लौट कर। इन दोनों के जोड़े का उदाहरण विश्व के इतिहास में खोजे नहीं मिलते का।

भरत और लक्ष्मण के जीवन के आदर्श और मान्यता में कुछ भिन्नता भी है क्योंकि प्रभु को इन दोनों के माध्यम से भिन्न प्रकार के भक्तों को मार्ग-प्रदर्शन करना है। इसी भिन्नता के विवेचन का प्रयास है यहाँ।

भरत — भरत प्रेम दिवाने हैं इनके हृदय में श्री राम के प्रति अनुराग लबालब भरा हुआ है "भरतु अवधि सनेह ममता की।" (२-२८८) इनका मत है कि सब साधनों का फल एक ही है कि राम के चरणों में प्रेम रहे "साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू।।" (२-२८९) इनका मन वह भ्रमर है जो श्री राम-चरणों के रस से कभी अघाता ही नहीं इस कारण प्रभु-पदों पर मँडराता ही रहता है प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना।। राम

चरण पंकज मन जाहू। मुकुर
मधुप इव तजइ न पाहू।।" (२-७४) इनके
नेत्र प्रभु की मुख की माधुरि पीते
पीते भी सदा अतृप्त ही बने रहते हैं
संकोची इतने हैं कि प्रभु के सम्मुख
इनका मुँह खुलता ही नहीं "मोहि सनेह
सकोच बस सनमुख कही न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि पेम पियासे
नैन" (२-२६०) "नाथ भरत कछु पूँछन
चहहीं। प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं।।
(७-३६) | इतना सब कुछ होते हुए भी
इनके जीवन का आदर्श है "मैं तेरा
हूँ. प्रभु तुम रखोगे उसी में मैं संतुष्ट
हूँ। तेरी राजी में राजा है मेरी" यह
है इनकी दूसरी आत्मसमर्पण की
मनो वृत्ति। जीवन में भूल कर भी
प्रभु आज्ञा की अवहेलना इन्होंने
की ही नहीं*" मोरे हुँ भरत न
पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ।" (२-२८९)
कारण इनकी आन्तरिक मान्यता है"

*कहि [illegible] ---- नीका" (२-२२५) "[illegible] ---- [illegible] (२-२६४)
सपनेहुँ कबहुँ ---- प्रतिकूल (२-४८)

"राम रजाइ मेट मन माहीं। देखा
सुना कतहुँ कोउ नाहीं॥ (२-२५९)
आग्या सम न सुसाहिब सेवा।
सो प्रसादु जन पावै देवा॥ (२-३०१)
आज्ञा रूपी प्रसाद ही मांगा है
चित्रकूट में। उन्होंने जब प्रभु आज्ञा स्पष्ट
रूप से दे देते हैं संतुष्ट होकर
अयोध्या लौट आते हैं। कारण
प्रभु की संतुष्टि के सामने अपने
स्वार्थ की रुचि का महत्व कुछ भी
नहीं। इन्होंने जीवन में तनिक
भी नहीं। "जो सेवकु साहिबहि
सँकोची। निज हित चहइ तासु मति
पोची॥ (२-२६८) प्रभु आज्ञा पालन
में अपने नित्य-प्यासे नेत्रों को प्रभु
के श्रीमुख की माधुरी पान करने
से वंचित करने के लिये और
तैयार हो जाते हैं भरतलाल।
यद्यपि मन ही मन कुछ न
होने के कारण प्रभु ने पादुकायें

पर भी डराता नहीं रहता है उनकूं। यह है भरत और लक्ष्मण राम की भावना की विभिन्नता।

~~[illegible]~~ भरत के हृदय में पूर्ण वैराग्य भाव हुआ है वे अयोध्या की राज की सम्पत्ति सम्भालते हैं एक चौकीदार समझते हैं अतः, चित्रकूट जाने के पूर्व उसकी समुचित व्यवस्था करते हैं एवं लौटकर आने पर प्रभु पादुका सिंहासन पर स्थापित कर स्वयं उनके सेवक की हैसियत से व्यवस्था करते हैं – पूर्ण त्यागी है न लोभ है न अधिकार – स्वामी वन में है अतः सेवक भरत भी नन्दीग्राम में तपस्वी वेश में प्रभु चरणों का ध्यान लगाये कुछ काल की अवधि काटते हैं – प्रभु प्रेमी को प्रभु आज्ञा का पालन जो करना है

"भरतहिं कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही॥ (२-१८४) तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥" (२-२०८) "भरत राम आयस अनुसारी" (६-२२०)

चित्रकूट के मार्ग में "मनहीं मन मागहिं बरु एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू॥ (२-२२४)" "सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहबल बचन प्रेम बस बोलहिं॥" (२-२२५) अपूर्व प्रेम तो किसी

प्रभु की आतुरता है

तरह के कष्ट की परवाह ही क्या करे। प्रभु उत्सुकता है कि अपूर्व प्रेम है कि प्रभु दर्शन बिना भरत जीवित नहीं रह सकते यह उनका दृढ़ निश्चय है "बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥" (७-१) अन्तर्यामी प्रभु भरत के हृदय की इस बात को जानते हैं। तभी तो रावण वध उपरांत विभीषण राज्यतिलक के बाद भरत से मिलने के लिये अधीर होकर विह्वल होते हुए विभीषण से इति कह रहे हैं "तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहि। देखौं बेगि सो

जानहु करु परवा निहोरे तुउँ तोरिहै।
बीतें अवधि जाउँ जौं जियत
न पावउँ तोही।(७-११६) भरत के
आत्मसंघर्ष में भी प्रभु को पास
है तभी तो दृढ़ता के साथ लक्ष्मण
के प्रति कहते हैं "सुनहु लखन भल
भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ
सुना न दीसा॥(२-२३१) और
देव गुरु बृहस्पति जी कहते हैं
"भरत सरिस को राम सनेही जगु
जप राम रामु जप जेही॥"(२-२१८)

सदृशता — इसके विपरीत लखन
लाल की मान्यता है "तू मेरा है अतः
तुम्हें मेरी इच्छा पूरी करनी ही
पड़ेगी"। ये दोनों भ्रातागण
स्नेहपूर्ण संयमी सन्यासी भ्रातृ-
स्नेह में आत्म विस्मृत और
सीता विस्मृत रहते हैं। अपना स्नेह
कभी वाक्यों से प्रकट नहीं किया।

(1354)

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं
शरणं व्रज के आदर्श स्वरूप
है। इनका अपना जीवन कुछ है
ही नहीं और प्रभु के सिवाय और
किसी को अपना समझते ही
नहीं। आप सब कार्य प्रभु
के ही करते और छायावत
प्रभु के साथ ही आजीवन
सेवा में लगे रहे। "गुरु पितु
मातु न जानउँ काहू। कहउँ
सुभाउ नाथ पतिआहू॥ जहँ
लगि जगत सनेह सगाई।
प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी।
दीनबन्धु उर अंतरजामी॥"
(२-७२)। प्रभु की आज्ञा पालन
और प्रभु प्रेम में शास्त्रों के
नियमों की उपेक्षा करने
में तनिक भी हिचकिचाहट
नहीं है इनमें — सूपनखा.

एक स्त्री की नाक कान काट डालते हैं और, अग्नि-परीक्षा के समय अपनी अर्धांगिनी सीताजी की चिता के लकड़ी सजा डालते हैं और फिर और सीता-त्याग के समय अपने हृदय पर पत्थर रख कर सीता जी को वन में [illegible] कर वन में अकेली छोड़ आते हैं क्योंकि प्रभु की आज्ञा जो है।

"उचित कि अनुचित किए विचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू॥"

ये सब कुछ करने और सहने को तैयार हैं किन्तु प्रभु से अलग एक क्षण के लिये भी इनको काल नहीं पड़ती, नहीं रह सकते, जीवित नहीं रह सकते। "धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥ मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥" (२-७२) जिन्हें कीर्ति ऐश्वर्य था

प्रकृति की चाह हो अथवा जिसे फल
की चाह हो उसी को स्वार्थप्रिय
होते हैं। भगवान कोई से सिर्फ
प्रभु चरणों में ही इनकी सहज प्रीति
रही ये कभी प्रभु के श्री चरणों से
पृथक हुए ही नहीं। इनका शील
स्वभाव है कि यथावत श्री राम के
साथ रहें। प्रभु जानते हैं लखन
को छोड़कर भी लाभ नहीं, अतः
तुरत ले जाने को राजी हो जाते हैं।
प्रभु श्री राम की मानसिक परेशानी
इनको असह्य है उनकी प्रीति
के लिये लक्ष्मण अनिष्ट से अनिष्ठ
सम्बन्धी यहाँ तक कि सहोदर
भाई तक का वध करने में तनिक
हिचक नहीं है इनको "राम
निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर
दोउ भाई॥ (२-२३०)। इसी तरह
श्री राम का नाम मात्र का भी
अपमान नहीं सह सकते और

जनक महाराज को अनुज मनुज के
खरी खोटी खरी सुना डालते हैं,
परशुराम जैसे क्षत्रिय कुल नाशक
विश्व विख्यात वीर को उनके हाथ
लेने से नहीं हिचकते भी नहीं
स्वरूप से पिता दशरथ बालक के लिये
कटु सन्देश सुमंत को सुना डालते
हैं. कैकई के प्रति इनका आन्तरिक
रोष शान्त हुआ ही नहीं और
सुग्रीव पर क्रोध कर बैठते हैं इत्यादि
इत्यादि। इसीलिये ग्रंथ को प्रकारान्तर
से तुलसीदास जी इन्हें श्रीराम की
यशः रूपी पताका का दंड बतलाते हैं।
बिना दंड के पताका कैसे फहरायेगी।

"कही जनक जसि अनुचित बानी।
बिद्यमान रघुकुल मनि जानी (१-२५३)
"मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू (१-२७८)
"जौं पै कृपाँ जरिहिं मुनि गाता। क्रोध
करइँ तनु राखब बिधाता॥ (२-२७९)
"पुनि कछु लखन कही कटु बानी॥ (२-२८१)

1358

"११
कोउ कहूं कहँ पूर्न पुनि जिले मन कर
छोभु न अहइ (२-१६४) 'कोउ वैरी
सोच सुरति सुनि कान। कहद कपीस
सुनि भय प्रकासा॥ (४-२०)
दुष्ट पति की रीति बिमल पता का।
दंड समान भय अस जाका॥"
(१-१६)

सीता और भरत विहीन राम की कल्पना की जा सकती है पर लक्ष्मण के बिना राम कहाँ। यही है भरत और लक्ष्मण के जीवन की मान्यताओं में भिन्नता - भरत का व्रत "मैं सेवक हूँ तो ही राजी मैं रहूँगा वैसी" यानि प्रभु के मन के अनुसार समर्पण। लक्ष्मण का व्रत "मैं सेवक हूँ मेरी इच्छा पूरी करानी ही होगी" - इसीलिए मिले। भरत साधकों के आचार्य हैं और लक्ष्मण साधकों के (सिद्धों के) आचार्य हैं।
जय राम जय राम जय जय राम

(लेख सं. 39) (1359)

15/12/81 "देखी बारि अमित सुंदरताई" (3-35)

श्री रामचरितमानस जैसा पावन गंगा रूपी वह ग्रन्थ है जहाँ अविरत भक्ति रूपी अमृत-जल प्रवाह सतत बहता ही रहता है। इसमें अध्याय उपाख्यान (कथाएं) घाट रूप हैं। प्रत्येक घाट में जिसका कि गोता लगाया जाय उतने ही बहुमूल्य रत्न मिलते हैं। प्रत्येक घाट में प्रभु सुमिरन (अनुराग अथवा शत्रु भाव से) रूपिणी नौका है एवं नाम रूपी पतवार है। ऐसी नौका पर सवार हो नाम-पतवार हाथ में लेने वाले को सुरसरि के उद्गम-स्थल श्री प्रभु के पाद पद्मों में ठेठ पहुँचा देती। ऐसे ही उपाख्यान-घाट में गोता लगाने का प्रस्तुत प्रयास है यह।

पर वृहद् ग्रन्थसागर के है तुल्य में अनुरागी भक्तों की इच्छापूर्ति एवं जनता जनार्दन के उद्देश्य

असुरों का वध ~~[illegible]~~ करना भी एक
प्रयोजन हेतु रूप ग्रहण किया है। अभी
अभी सत्यसंध प्रभु "निसिचर हीन
करउँ महि" (3-9) का प्रण कर चुके हैं।
अब उस प्रण को पूरा करने का श्री
गणेश करना है। एक ही स्थान पर
बैठे बैठे निशिचर कुल का नाश सिर्फ
इच्छा मात्र से कर सकते हैं किन्तु
वृन्दा के वर को प्रमाणित करने के लिये
नर लीला करनी है या यों कहा जाय प्रभु भव
के भक्तों को उद्धार के लिये लीलामय
प्रभु नर लीला करते हैं "मैं कछु
करबि ललित नरलीला। तुम्ह पावक
महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं
निसिचर नासा॥ (3-24)। राक्षस कुल
का नाश करने के लिये प्रभु की योजना
बनी हुई है - उनके लिये युद्ध अनिवार्य
है ताकि युद्ध भूमि में इस प्रकार प्रभु द्वारा
नाश नर-तन से कर सकें। इस योजना
के अनुसार प्रभु बाल्यपन से ही संघर्ष

विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा से मारीच राक्षस को फरहीन शर से मार कर लंका के निकट समुद्र के किनारे फेंक देते हैं ताकि वह सहायक बनकर सीता हरण कराये। प्रभु की सहज स्वाभाविक सुन्दरता को [illegible] कर यह दुष्ट मारीच हिंसा भूल कर प्रभु का प्रेमी बन जाता है। यह है और सुंदरता का प्रभाव। उसके हृदय में प्रभु प्रेम छुपा हुआ है और उसे विश्वास है कि अपना [illegible] वश हो अनुराग सहित प्रभु मुझे [illegible] मार देंगे। "चला राम पद पुंज प्रेमा।। मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही।। निर्बान दायक क्रोध जाकर भगति अवसहि बसकरी। निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुख सागर हरी।। (3-26)

इसी प्रकार मृत्यु का बीजारोपण करने के लिये प्रभु ने रावण की बहन सुपनखा को चुना है क्योंकि यही

(1362)

पहले से खर दूषण और ~~स्ती~~ त्रिशिरा
अपने तीनों भाइयों को युद्ध के प्रेरित करती
और ~~[illegible]~~ इनके वध के बाद
रावण को उद्बुद्ध कर युद्ध के लिये
सीता हरण के लिये उत्तेजित करती।
अतः "उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन॥
(७-११३) की प्रेरणा से प्रेरित
हो शूपनखा वन में भटकती हुई
आती है। दंडक वन प्रदेश में
पंचवटी स्थान है पर्णकुटि के पास
है प्रभु का। भटकती हुई ~~अत्यन्त~~
अति सुंदर रूप धार कर आती है
और दोनों भाइयों की रूप माधुरी
पर आसक्त हो तुरत तरस ही दे दो
दो बार दोनों भाइयों के पास प्रेम।
कुत्सित प्रस्ताव रखती है और
दोनों के द्वारा ठुकराये जाने पर
श्रीराम के पास जाकर भयंकर रूप
धारकर सीता को निगल जाने का
प्रयास करती है। तब प्रभु को

दूसरा पर लक्ष्मण लाल के ऊपर
से उसके नाक काट लेते हैं ताकि
वह जाकर खर दूषण त्रिशिरा को
बदला लेने को प्रेरित करें और
उनके वध के बाद रावण को प्रेरित
करे। इस प्रकार कुछ समस्त
असलता भी राक्षस समूह के नाश
का बीजारोपण करते हैं।

खर दूषण रावण के समान बलवान
हैं "खर दूषन मोहि सम बलवंता।" (2-23)
रावण की यह दशा उन्हें असहाय है
गयी और उसके अपमान का बदला
लेने चौदह हजार के राक्षस
सेना लेकर चढ़ आये। प्रभु नर लीला
जो कर रहे हैं अतः आपत्ति की विशेष
अपनी कृपा व्यक्त करते हुए लक्ष्मण को
साथ देकर सीता कि देव में भेज देते हैं
मायावी राक्षसों से इस प्रकार सावधान
रहने का आदेश देकर किन्तु इसका
सी नहीं असली रहस्य कुछ और ही है

प्रतीत होता है (1) प्रभु खर पर महती कृपा करना चाह रहे हैं अतएव प्रभु इन्हें स्वरूप दिखाकर (2) सेना सहित तीनों भाइयों को सम्मुख मार कर उन्हें निर्वाण देकर (3) एवं शूर्पणखा के माध्यम से यह जानकारी कराकर कि राम इतने प्रशिक्षित वह पुरुष ही हैं कि प्रभु के हाथ ही रावण को मारा जाना। उनके ऐश्वर्य को जान सके "लछिमनहि को आरउ किन्ह भगनैसा" (3-23)॥

सीता सहित लक्ष्मण के चले जाने के बाद प्रभु हँसकर धनुष बाण धारण करते हैं। हँसी प्रभु के प्रपञ्च: करुणा की महती कृपा एवं इनकार बताती है कि (1) एक दुष्टा व्यभिचारिणी स्त्री का पक्ष लेकर ये राक्षस व्यर्थ मारे जा रहे हैं (2) इस तरह प्रमाणित प्रभु ऋषि की आज्ञा "उग्र साप मुनिबर कर हरहू॥ बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया। चले मुनि आयसु पाई" (3-13)

का पालन बिना विशेष प्रयास के एक ही
स्थान पर हो जायेगा, दंडकवन शाप
मुक्त होगा, और मुनिगण निर्भय
हो जायेंगे। (3) इस प्रकार हे सखा प्रभु
योगाचार्यों का आकर्षण और प्रसाद
कर रहे हैं ताकि रावण द्वारा अशुद्ध
भूमि से लौट न जायें। (4) अपनी
कठोरता भी व्यक्त कर रहे हैं। तत्काल
से पृथ्वी हो रावण दुःखित। प्रभु स्वरूप
नायक काल काटी सूपनखा को सेना के
आगे करके प्रस्थान कर रहे हैं ताकि
हो जान लें कि इसका बदला लेने हम
आये हैं किन्तु इससे भी राम का एक
उद्देश्य सिद्ध हो गया कि सूपनखा
अपनी अपकीर्ति रखा है रावण से कि राम
अकेला ही युद्ध में चौदह कर डाला है
और खर दूषण को मार डाले हैं रावण को
मार डाला रावण को इनके अपरिमित
बल से भलि भाँति परिचित करा
दें।

रोमांच भर और मृदु का साज सब
सज चुका। वह उनका बदला लेने प्रभु
के सामने से ऐसा रहते हैं लेकिन नहीं
अब प्रभु अपनी महती कृपा का प्रका
प्रसार किया। इनको अपना विश्व
विमोहन मोहन रूप दिखाकर। प्रभु
को निरख रहे हैं "सन्मुख होइ जीव
मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं
तबहीं।" (पृ. ७०) प्रभु के सन्मुख आते
ही उनके कोटि कोटि जन्मों के पाप नाश
होकर अब पूर्व संचित सुकृत पुण्य
उदय हो रहे हैं — वह तो प्रभु के श्रीमुख
की अतुलनीय सौंदर्य माधुरी का दुर्लभ
दर्शन कर रहा है चित्रवत् एक टक रहे
रह गये। ठगा सा रह गया। मन उसी
में डूब चुका मोहनी पड़ गयी। प्रभु अक्रूर
हो गये उनकी सोच भी वहीं की
भावना। कह न सका वह आतुर
अपने हृदय की उथल पुथल को,
आन्तरिक के हर्ष को और व्यक्त करता।

हैं उन्होंने सचिव को बुलाकर "हम
भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं
असि सुंदरताई।।" (--) यद्यपि
भगिनी कीन्हि कुरूपा। वध लायक
नहिं पुरुष अनूपा।" (3-2) । शत्रु
प्रथम युद्ध भूमि में युद्ध हेतु उपस्थित
होकर भी स्वीकार करता है कि इनकी
सुन्दरता अतुलनीय है। ~~[illegible]~~
इनका वर्तमान शरीर एवं जीवन चर्या
राक्षसी है तो क्या हुआ, न जाने किन
जन्मों के पुण्यफल से प्रभु ने हमें इस
विमोहन मोहन माधुरी को दिखे हैं।

अब प्रभु सारी सेना पर मेहती
कृपा करना चाहते हैं और खरदूषन
पर दूसरी बार कृपा करना चाहते हैं
अतः प्रभु की आज्ञावश हो युद्ध को
छोड़ कर दूती के द्वारा प्रस्ताव
भेजते हैं कि सीता को देकर दोनों
भाई सकुशल लौट जावें सकते हैं।
"देहु तुरत निज नारि दुराई। जीवत

(१३६४)

अमर जाइ द्वौ भाई।।(३-१४) प्रभु
के मुख से इस प्रस्ताव का फटकार
पाकर इधर खर दूषण घोर संग्राम
करने लगते हैं। रावण को भगवान शंकर
का वर था कि वे किसी से न मरेंगे
* अवतार * लीलाएं एवं सार
आपस में लड़ कर मृत्यु होगी * इस
वरदान को पुरस्कार करने के लिये प्रभु
अपनी माया से उन्हें नहीं मारते हैं
और संग्राम ने बाद प्रभु एक कौतुक
करते हैं अपने बीर बाण चलाते हैं
जिससे राक्षसों को यह दिखते हैं जहाँ
जिधर देखते हैं राम ही राम दिखते
अतः राम राम चिल्लाते हुए आपस
में ही कट मरे। इस तरह यद्यपि भी
सत्य है नहीं और तथापि चूंकि राम
राम पुकारते हुए मरते हैं अतः सब
राम नाम के प्रभाव से मुक्त हो जाते हैं।
अपने दो राम नाम के उच्चारण से
मंगल होने का यह विचित्र उदाहरण दृष्टान्त है
श्रीरामचन्द्र जी कौतुक करके चले रह गए।

असुरों को एक साथ ही निर्वाण देना
यह प्रभु की महती कृपा है। सुर मुनि
सभय देखि माया नाथ कौतुक करयों
देखहिं परसपर राम करि संग्राम
रिपु दल लरि मरयो॥ राम राम कहि
तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारे छन महुँ ~~कृपानिधान~~
कृपानिधान॥ (3-20) इसी घटना
को स्मरण करके मारीच ~~[illegible]~~ मन
में भयभीत हो कर जा रहा है रावण
के साथ मृग बनके। सोचता है मन
मारीच कि जब प्रभु के क्रोध ने ही
इनको निर्वाण पद दे डाला तो मेरी
भक्ति के वश हो प्रभु जब मुझे
पकड़ने पीछे दौड़ेंगे उस समय प्रभु
की छवि का दर्शन करूंगा। फिर भगवान
भाग्यवान मुझसे कौन होगा जो राम
प्रभु के हाथों मरूंगा।" निर्बान दायक
क्रोध जा कर भगति अबसहि बसकरी।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि

सुख सागर हरी॥ प्रभु पधारे धार धावर
धरें सब सनुबस। फिरि फिरि प्रभुहि
बिलोकि हरषि चरन्धन की स्मरण॥"
(उ-२४)। जनपद के सास्थल से भाग-
कर एक श्रम स्वरूप के सान्निध्य कहता
है, भोजे करि कातर हुए यहाँ जिस जिस
मार्ग से भागते थे वहाँ वहाँ वे श्री
राम को ही अपने सामने खड़ा
देखते और इस प्रकार श्री राम ने ही
प्राण के जन स्थान का नाश किया है।"
(बाल्मीकि रामायण-सर्ग ३१-१४/२०)

युद्ध-स्थल में युद्ध करने के लिये
उपस्थित शत्रु जिस सुन्दरता की
अतुलनीयता और प्रधानता (लखावन-कर
रहे हैं क्या ही विलक्षण मोहक
और अद्भुत सुंदरता होगी वह। ऐसी
सुंदर दर्शनीय छवि का सौभाग्य तो
किसी प्रभु को नहीं मिला। इस
सुन्दरता को निजी एवं महत्व का
प्रमाण यह स्तोत्र कहाँ मिलता है कि

जहाँ जहाँ भी प्रभु शोभा का वर्णन है वहाँ 'खरारी' नाम प्रभु के लिये आया और यह प्रभु का 'खरारी' नाम अधिक प्रिय है अतः कवि ने भी इसका विविध स्थलों पर प्रयोग किये हैं:—

(1) अवतार के लिये प्रकट होने पर माता कौशल्या दर्शन करती है
"लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुज चारी भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी" (1-192)

(2) सुरेश इन्द्र स्तुति करते हैं:—
जय राम सोभाधाम दायक प्रनत बिश्राम धृत तोन बर सर चाप भुजदंड प्रबल प्रताप॥ जय दूषनारि खरारि मर्दन निसाचर धारि॥ (6-113)

(3) ~~[struck through]~~ अयोध्या लौटने पर पुरवासियों के लिये बहु-रूप धारण के अवसर पर "कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी" ॥ (7-6)

(1373)

(४) भगवान शंकर गरुडदेव से ईश्वर का नाम खरारी प्रिय कहते हैं
"धर्मसील जे कर उपकारी।
ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी॥"
(७-१२८)

(५) भक्त प्रवर सुतीक्ष्ण जी स्तुतिपूर्ण प्रार्थना करते हुए
"तदपि अनुज श्री सहित खरारी।
बसतु मनसि मम काननचारी॥"
(३-११)

एक प्रश्न यह खड़ा रह जाता है कि तीनों भाइयों सहित औरों द्वारा श्रीराम जी की स्तुति प्रीति मिल जाती किन्तु [illegible] प्रभु के लिये हैं व गुरु वृहस्पति जी की राम की विरद "राम सदा सेवक रुचि राखी। वेद पुरान साधु सुर साखी॥" (२-२१९) की जो दुहाई सुरेश को दी थी उसका प्रमाण शत्रुघन के प्रसंग में कहाँ मिला तो क्या उनकी रुचि अपूर्ण ही रह गयी?

नहीं नहीं प्रभु के वचन हैं। जैसे मुझे
जैसा लगता है वैसे ही इसी प्रकार
भजता हूँ। ये वचन भी प्रमाणित
होते हैं किन्तु यदि किसी कारण वश
पूर्ण नहीं हो पाते तो निश्चय पापकर होते
हैं। पर होते अवश्य ही पर यह
कहता हूँ श्री रामावतार मर्यादा
पुरुषोत्तम का अवतार है। इस
पति-व्रत की मर्यादा से बंधे होने
के अनुसार इस एक-पति व्रत को
पूर्ण रूपेण निभाता ही है। शूर्पणखा
के पाप तो प्रभु के निकट पहुंचने
ही नष्ट हो चुके थे और पाप नष्ट होने
से वह श्री हरि की जब भी हो तभी
वह काम भाव का रूप ले प्रस्ताव
रखती है। इसी प्रकार जनकपुर में
बहुत सी स्त्रियाँ काम भाव से
प्रभु को बहुत सी सखी भाव से श्री
राम के प्रति प्रस्ताव करती थी। ~~चित्र~~
चित्रकूट के मार्ग में कुछ स्त्रियाँ तो

(1374)

काम भाव सें और कुछ स्तुति भाव
से और कृष्ण हुये थी — "और भोग
पाउब बिधि पाहीं। र रविछहिं
सहित आँखिन्ह माहीं ॥" (२-१२९)
इस पद्मान्नवृत्ती मर्यादा पुरुषोत्तम
श्री राम इस जन्म में इनकी इच्छा
पूरी न कर सकने के कारण द्वापर
में लीला पुरुषोत्तम श्री कृष्णाव-
-तार में इनकी इच्छायें पूरी
करते हैं — काम भाव वाली सब
श्री कृष्ण की रानियाँ बनीं और
सखी भाव वाली सब गोपियाँ।
शूर्पणखा कुब्जा हुई और श्री
कृष्ण उसके भवन पधारे थे।
गर्ग संहिता में शूर्पणखा की
विस्तृत कथा है (मा॰ पी॰ कि 194)
प्रभु तो पूर्णकाम हैं अपनी कामना
कुछ भी नहीं और भक्तों की कामना
पूरी करते हैं।
श्री राम जय राम जय जय राम

२५/१२/८१

त्रेता और द्वापर (एक झांकी)

परब्रह्म के श्रीराम और श्रीकृष्ण दो ही अवतार भिन्न भिन्न उद्देश्यों को लिये हुए हुए हैं। तदनुसार दोनों में कहीं समानता, एवं कहीं असमानता और कहीं भिन्नता भी रही है। दोनों अवतारों के कुछेक पहलुओं पर उपलब्ध सामग्रियों को सिर्फ एकत्रित संग्रह करने का अल्प-प्रयास मात्र है यह ताकि रुचि अनुसार विभिन्न ~~प्रसंगों~~ चरित्रों का रसास्वादन किया जा सके। इनमें व्यवहृत संकेत इस प्रकार हैं:—

(त्रे) = त्रेतायुग। (द्वा) = द्वापर।
रा० = श्रीरामचरित मानस
मा०पी० = मानस पीयूष
वा० = श्री वाल्मीकीय रामायण
भा० = श्रीमद् भागवत पुराण
अ०रा० = अध्यात्म रामायण

अवतार (२) मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम - विभिन्न मर्यादाओं की स्थापना एवं पालन किये
(३) लीला पुरुषोत्तम श्री कृष्ण - भक्तों की रुचि रखने के लिये मर्यादाओं का उल्लंघन भी कर देते थे।

अवतार के समय दर्शन एवं विराट रूप दर्शन

(१) पिता दशरथ को दर्शन नहीं दिये किन्तु माता कौशल्या को चतुर्भुज के दर्शन जन्म के पहले दिये (रा - १ - १९२) एवं विराट रूप के दर्शन शिशु अवस्था में दिये (रा० १-२०१) ॥ काकभुसुण्डी जी को अपने उदर में
(२) अर्जुन को विराट रूप का दर्शन कराया (गी० ७-८०) ॥
(३) चतुर्भुज का दर्शन पिता वसुदेव जी एवं माता देवकी दोनों को दिया (भा० स्कन्ध १० श्लो० ४/७ अ-३ एवं श्लोक २३)
(४) माता यशोदा को जम्हाई लेकर विराट रूप का दर्शन (भा० स्क० १० अ० ७ श्लो० ३५/३६)
(५) यशोदा को मिट्टी खाने के प्रसंग में विराट रूप का दर्शन (भा० १०-८-३७/३८)

(२९) सुतीक्ष्ण जी को बहुरूप और निराकार दर्शन (मा० १०-१३-४५ सोरठा)

(३०) रघुकुल जी को चतुर्भुज दर्शन शिवजी की गोद में सोये हुए सनकादि से पूजित चतुर्भुज दर्शन (मा० [illegible]-१०-३२-४६)

जन्म स्थान, समय, योग, ग्रह एवं काल -

(१) रघुवंशी अवध नरेश दशरथ के राजमहल - दिन में १२ बजे - चैत सुदी ९ को। जन्म में ५ ग्रह उच्च के पुनर्वसु, कर्क लग्न है। पाँच ग्रह एवं त्रिलोकनाथ के (गी० पू० - भाग ३ पृ० २७)

(२) रघुनाथ राम के नंदी लगा हो है - मध्याह्न की ८ को रात में १२ बजे -

पुत्रेष्टि यज्ञ

(१) पुत्रेष्टि यज्ञ के अनुष्ठान से दशरथ को खीर दी जिसे खाकर रानियों ने गर्भ धारण किया। १२वें मास में जन्म हुआ - राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न क्रमशः जन्म लिया। (वा० रा० १८ श्लो० ८-१०) (रा० १-१९२)

अंश —

(२) अंशांशी सहित पर कृष्ण ने अवतार लिया
(रा० १-१५२) (रा० १-१८७) (रा० १-१९५/१९६)
(वा० - सर्ग १८ - श्लो० १०से १४)
श्री राम + लक्ष्मण / भरत + शत्रुघ्न

(३) वासुदेव (श्रीकृष्ण)
संकर्षण (बलरामजी)
प्रद्युम्न + अनिरुद्ध (भा० स्कंध १२ अ०
११ श्लोक २१)

शेषावतार

(२) लक्ष्मणजी शेषावतार हैं। ये भगवान शेष के अंशी हैं। नित्य स्वरूप हैं अनंत हैं। (रा० २-१२६) (रा० ६-५४; ६-८३; ६-१०७; ६-७५; ६-७६; ६-५४) (वा० पी० बालकांड आ० १ पृष्ठ २६५ से २६८ तक)

लक्ष्मणजी श्री राम के अनुज हैं। उन्होंने जन्म से लेकर अंत तक कभी भी श्री राम से अलग रहे ही नहीं।

स्वधाम जाने के लिये श्री राम द्वारा त्यागे जाने पर सरयू तट पर प्राण वायु रोककर

स्वशरीर ही स्वधाम को गये (वा० उत्तरकांड सर्ग १०६ श्लोक १७)

(३) संकर्षण (बलरामजी) का जन्म श्री कृष्ण से पहले हुआ था। ये बड़े भाई हैं। ये शेषावतार हैं (भा० स्क० १० अ० ६८ श्लोक ३७; अ० ७९ श्लो० ३४; अ० ८५ श्लोक ३४)
ये कई बार श्री कृष्ण से अप्रसन्न भी रहे हैं:- ब्रज गमन (भा० १०-६५-१)
तीर्थयात्रा (भा० १०-७९-८ से ३०)
मिथिला में रहे जहाँ दुर्योधन को गदा युद्ध सीखना (भा० १०-५७-२६)

११ शैशव काल एवं कुमारावस्था (११ वर्ष की उम्र तक)

(२) श्रीराम अयोध्या राज्य महल में रह कर बाल (क) लीला, परिजन, पुरजन को आनन्द देते रहे इनका जन्मोत्सव अयोध्या में मनाया गया (रा० १-१९४)। काकभुसुंडीजी इनकी ५ वर्ष की उम्र तक इनके पास रहे। (रा० ७-७५)

*-(ख) पृष्ठ 1387 में देखो

(1360)

(३) जन्म होते ही श्रीकृष्ण को वसुदेव रातोंरात गोकुल पहुँचा दिया गया, यशोदा की शय्या पर सुला दिया गया। (भा० १०-४-[illegible]) और फिर गोकुल में इनका जन्मोत्सव मनाया गया। (भा० १०-५-१ से १६) कई राक्षसों को मार

(क) पूतना वध - (भा० १०-६-१३) - परमगति पायी (भा० १०-६-३५) कृष्ण का धाम

(ख) शकट (छकड़े) को पांव उछालकर उलट दिया। (भा० १०-७-७)

(ग) तृणावर्त दैत्य वध - (भा० १०-७-२८) आकाश में मारा

(घ) यमलार्जुन उद्धार - (इन दोनों वृक्षों के बीच में ~~[illegible]~~ ऊखल से बंधे हुए कृष्ण ने घुसकर दोनों वृक्षों को तोड़कर कुबेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव को ~~[illegible]~~ नारद के शाप से मुक्त किया (भा० १०-१०-२६)

(ङ) वत्सासुर और बकासुर वध - वत्सासुर को अन्तरिक्ष में फेंककर और बकासुर की चोंच पकड़कर चीर डाला (भा० १०-११-४३ से ५१ तक)

(च) अघासुर वध — पूतना और बकासुर के भाई अघासुर (अजगर) के मुख में घुसकर अपना शरीर बढ़ा कर उसका पेट फाड़ कर मार डाला। (भा० १०-१२-३४)
उपरोक्त समस्त घटनाओं को बाल्य पाँच वर्ष की आयु तक कर डाला। (भा० १०-१२-३७)

(छ) ब्रह्माजी के मोह का नाश — प्रभु की मनोहर लीला देखने की इच्छा से ब्रह्माजी ने वन में से बछड़ों व ग्वालों को चुरा ले गये। प्रभु ने सब जान लिये पूर्ववत् ही ग्वाल बालों की मूरत ने जितने बछड़े व ग्वाल थे उतने ही बछड़े का रूप धार रहा। एक साल तक किये रहा — किसी को पता नहीं चला (भा० १०-१४-४३)

(ज) धेनुकासुर वध — गधे का रूप धारे हुए इस दैत्य को बलरामजी ने पैर तालवृक्ष में घुमा कर मार डाला। (भा० १०-१५-३२)

(झ) कालिया दमन — यमुना में कूद कर कालिय नाग के फनों पर नृत्य कर

कर उसके सिर पर अपने चरण-चिन्ह अंकित कर दिये (भा. १०-१६-६३)

(अ) प्रलम्बासुर (गोपवेशधारी दैत्य) को बलराम जी ने मार डाला (भा. १०-१८-२०)

(ब) दावानल को श्रीकृष्ण ने मुख में पीकर ब्रज की रक्षा की (भा. १०-१९-१२)

उपरोक्त घटनायें सात वर्ष तक की आयु में घटी हैं। इसके अलावा वेणुगीत, चीरहरण, गोवर्धनधारण, रासलीला, महारास, एवं अन्य घटनाओं का वर्णन भी आठ वर्ष की आयु में [ग्यारह वर्ष की आयु तक] कर के मथुरा गये (भा. १०-२८-३)

(द) गोपियों पर कृपा — श्री कृष्णोपनिषद् में वर्णन है कि रामावतार में प्रभु की सुन्दरता पर दंडकवन के मुनिगण मुग्ध हो गये तब प्रभु ने उन्हें वर दिया और वे ही गोपियों के रूप में प्रकट हुए। कुछ श्रुतियाँ और कुछ ऋषि मुनियों के अनुगता हैं। अ. २१ में वेणुगीत पर गोपियाँ मुग्ध हैं सभी और प्रेम की पूर्णता प्राप्त करने के लिये

साधना में लगी सखी (भा. १०.२२) में चीर
हरण कर भगवान ने इनकी साधना की
पूर्ति की यही चीर हरण प्रसंग है
अनासक्ति का पूर्ण समर्पण जब प्रभु
स्वयं यह समर्पण स्वीकार करते हैं।
लीला पुरुषोत्तम श्री कृष्ण ने अपनी
लीलाओं में मर्यादाओं का उल्लंघन
न करके मर्यादाओं की स्थापना ही की है।
प्रेमी भक्त आत्मविस्मृत हो जाता है तब उसका
दायित्व प्रभु पर हो जाता है। यह तथ्य तभी
तक बाधक अहंकार विद्यमान रहता है जब तक
प्रभु से सम्बन्ध और उनका प्रसाद नहीं हो
जाता। ब्रज में श्रीकृष्ण केवल ग्यारह
वर्ष तक निवास करके मथुरा चले गये
थे तब ये वर्ष हैं या इसके पहले ही चीर
हरण लीला हुई थी (भा. पृष्ठ ३३०)। श्री
कृष्ण अवस्था एवं गोपियों की वृत्तियाँ।
(श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार द्वारा विश्लेषण
पृष्ठ ३२८ से ३३१ तक)।

(३) यज्ञपत्नियों पर कृपा - कोमल हृदय की उत्कट भावना से यज्ञपत्नियाँ भोजन लेकर प्रभु के सम्मुख आईं और दर्शन कर हृदय का ताप मिटाईं (भा. १०-२३-२३)। प्रभु ने तत्काल सिखाया "मेरा अंग संग ही मनुष्य की प्रीति का कारण नहीं होता। मुझ में चित्त लगाने से ही उपलब्धि शीघ्र सुलभ होता है" (भा. १०-२३-३२) रामावतार में लखन लाल प्रभु के अंग संग के एवं भरतलाल प्रभु में चित्त लगाने वाले भक्त हुए हैं।

(४) गोवर्धन-धारण - इन्द्र की पूजा बंद कराने से क्रुद्ध होकर इन्द्र ने वर्षा और प्रबल पवन से ब्रज को ताड़ित करना प्रारम्भ किया। एक सात वर्ष के बालक ने सात दिन तक एक हाथ पर गोवर्धन पर्वत को उठाए रख कर ब्रज की रक्षा कर अपनी योग शक्ति का परिचय दिया (भा. १०-२५-१९ एवं -२६-३)। इन्द्र द्वारा प्रार्थना से प्रसन्न हो प्रभु ने कहा "मैं जिस पर कृपा करना चाहता हूँ उसे ऐश्वर्य-भ्रष्ट कर देता हूँ। (भा. १०-२५-१६)

(ङ) रासलीला – काम-भाव की उपासिकाओं ने दास्य भाव की याचना की एवं प्रभु के करकमल स्तनों एवं शिरों पर रख कर अलंकृत करने की प्रार्थना की (भा. १०-२९-३९ और ४१) उनके मद और मान को शान्त करने के लिये प्रभु अन्तर्धान हो गये (भा. १०-२९-४८ एवं ३०-३५)। गोपियाँ प्रभु से बिछुड़ कर फूट फूट कर अपने चरणों को उनके स्तनों पर रखने के लिये प्रार्थना करने लगीं (भा. १०-३१-१३) उनको सांत्वना देते हुए प्रभु ने कहा जो मुझे भजते हैं उन्हें भी मैं नहीं भजता ताकि उनकी मनोवृत्ति निरंतर मेरी ओर लगी रहे। (भा. १०-३२-२०)

(छ) महारास – जितनी गोपियाँ थीं उतने ही रूप श्रीकृष्ण ने धारण किये (भा. १०-३३-२०) चाहे किसी भी भाव से जो प्रभु के श्री विग्रह का चिन्तन करता है उसके भाव की उपेक्षा न कर उसका कल्याण करते हैं। शारीरिक सान्निध्य आवश्यक नहीं, श्रवण, स्मरण, दर्शन, ध्यान आदि सान्निध्य की अपेक्षा अधिक

केवल रहता है। सम्भवतः आत्मक्रीड़ा भी।
आनन्द और रस प्रभु वृन्दावन में व्याप्त है।
वियोग ही संयोग का पोषक है। गोपियाँ
कृष्ण की परकीया नहीं, स्वकीया थीं।
श्री कृष्ण आत्माराम हैं, आत्माकार वृत्तियाँ
ही राधा एवं श्रेष्ठ अन्तर्मुखि वृत्तियाँ
गोपियाँ हैं। प्रभु का एकमात्र धर्म - प्रेम-
परवशता, दया-परवशता एवं भक्तों की
अभिलाषा पूर्ति है। श्री कृष्ण की उम्र
दस वर्ष की थी। उनतीसवें से तैंतीसवें
अध्याय - रास पंचाध्यायी कही जाती हैं
(श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार द्वारा विश्लेषण,
पृष्ठ ३७५ से ३८० तक।

(ख) गोपियाँ स्वकीया थीं पर उनमें परकीया
भाव था, परकीया भाव में तीन बातें बड़े
महत्व की होती हैं; अपने प्रियतम
का निरन्तर चिन्तन, मिलन की उत्कट
उत्कण्ठा एवं दोष दृष्टि का अभाव।
निरन्तर साथ रहने के कारण स्वकीया में तीनों
बातें गौण हो जाती हैं, परकीया में सदैव
तीनों भाव बने रहते हैं। (पृ ३८०)

(ण) सुदर्शन (सर्प) का उद्धार एवं शंखचूड़ (कुबेर के सेवक) का वध (भा. १०-३४)

(द) अरिष्टासुर (बैल रूप) दैत्य का वध (भा. १०-३६-१४)

(ध) केशी (घोड़े रूप) एवं व्योमासुर (गोप रूप) का वध (भा. १० ३७-८ एवं ३२)

(२) दशरथपुत्र राम के जन्म में

(ख) ताड़का (अविद्या) वध - विश्वामित्र के साथ जाते समय इन्होंने ताड़का को एक ही बाण से मार डाला। (रा. १-२०९)

(ग) सुबाहु वध (रा. १-२१०)

(घ) अहल्या उद्धार (रा. १-२११)

(ङ) मारीच को फर हीन सर देकर लंका के पास समुद्र तट पर भेज दिया। (रा. १-२१०)

खरदूषण का युद्ध था (का. १-२४-२६)

श्री कृष्ण को मारने के लिये कंस द्वारा भेजे गये उपरोक्त राक्षसों का चित्त श्रीकृष्ण पर केन्द्रित होने के कारण प्रभु के हाथों मर कर सब मुक्त हो गये। रामादि वर्ण की अनुमति तक श्रीकृष्णवतार से रह कर उपरोक्त राक्षसों का वध करते हैं।

श्री राम का शैशव माता पिता के पास राजमहल में ही बीता। कुमारावस्था के अंतिम चरण में विश्वामित्र के यज्ञ रक्षा के लिये राम लक्ष्मण ताड़का और राक्षसों से युद्ध करते हैं।

किशोरावस्था (११ से १५ साल तक की उम्र)

(२) विवाह के समय श्री राम की उम्र १३ और सीता की ६ साल की (वा० ३-४७-४ और १०)।

राजकुमार राम के लिए किशोर शब्द (मा०
कहहु सुन्दर सुत परम किसोरु (१-२०९)
स्याम गौर मृदु बयस किसोरा (१-२१५)
बय किसोर सुषमा सदन (१-२२०)
गौर किसोर बेषु बर काछें (१-२२९)
बय किसोर सब भाँति सुहाए (१-२२५)
भूप किसोर देखि किन लेहू (१-२३४)
कौसलराज किसोर (१-२६४)

सीताजी के स्वयंवर में द्वीप द्वीप के वीर पुरुष [illegible] ढेर चार कर गये हैं, क्योंकि शिव धनुष को हिला तक नहीं सके; इस स्थिति में वाल्मीकि [illegible] ने राम की किशोरावस्था नहीं की

निराश होकर जनक जी को कहना पड़ा
कि पृथ्वी वीर-विहीन हो गयी और
सीता अविवाहित ही रह जायगी किन्तु
इस पर भी कोई प्रत्युत्तर नहीं आया। अन-
न्तर श्रीराम ने धनुष को आसानी से उठाकर
तोड़ डाला इस प्रकार त्रिभुवन विजयी
हुए और सीता जी को प्राप्त किया। (रा०

त्रिभुवन जय समेत बैदेही। (१-२५०)
भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा। (१-२५०)
दीप दीप के भूपति नाना।
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। } १-२५१
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय (१-२५१)
तिल भरि भूमि न सके छड़ाई।
बीर बिहीन मही मैं जानी।
कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ। } १-२५२
रावन बान छुआ नहिं चापा। (१-२५०)
अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा (१-२६१)

जिस परशुराम ने २१ बार पृथ्वी भर
के राजाओं को मार डाला था वह भी
जयजयकार करते हुए वन को तप करने

चले गये। इस प्रकार [illegible]
कर विश्व विजयी सिद्ध हुए।

(3) श्री अक्रूर जी को मार्ग में यमुना के नीर का
निमज्जन पर ग्यारह वर्ष की उम्र में
श्री कृष्ण ने जल में दर्शन दिये (
भा. पृष्ठ 330)

(क) कंस के धोबी ने पोशाक छीनने पर भगवान श्री
कृष्ण को दुर्वचन कहे तब प्रभु ने अपने
हाथों के अग्रभाग से उसका सिर धड़ से
अलग कर दिया। (भा. १०-४१-३८)

(ख) कंस के दर्जी ने श्री कृष्ण और बलराम
के सुन्दर वस्त्र बना दिये। प्रसन्न प्रभु ने
सारूप्य मोक्ष और इस लोक में प्रीति बल
अपार बल दिया (भा. १०-४१-४२)

(ग) सुदामा माली ने सुगन्धित मालायें
दी और अनुपम भक्ति पाई (१०-४१-४९)

(घ) त्रिवक्रा (कुब्जा) ने कंस के लिये बनाये
हुए चंदन को कृष्ण और बलराम को
दे दिया (भा. १०-४२-४) प्रभु ने उद्धार
कर उसके अंग को सीधा कर दिया (श्लो-८)

(उ) धनुष भंग - इंद्र यज्ञशाला में पहुंच कर धनुष को बाँयें हाथ से उठा कर तोड़ डाला और उसके टुकड़ों से कंस की सेना का संहार करने लगे (भा. १०-४२-१७ एवं २०)

(ऊ) कुवलयापीड़ (हाथी) और महावत का वध (भा. १०-४३-१४) और हाथी के दाँत लिये हुए रंगभूमि में आये सब लोगों को अपनी अपनी भावना के अनुसार दीखे (श्लो. १७)

(ए) चाणूर और मुष्टिक मल्लों का क्रमशः श्री कृष्ण और बलराम द्वारा वध (भा. १०-४४-२३ एवं २४) बलराम ने कूट और कृष्ण ने शल और तोशल को मार डाला (२६ एवं २७)

(ऐ) कंस - उछल कर कंस के मंच पर चढ़ गये। वह हाथ तलवार उठाकर वार करने का प्रयत्न करता ही रहा पर फिर भी कृष्ण ने उसके केश पकड़ कर मंच से रंगभूमि में गिरा कर उस पर कूद पड़े जिससे उसके प्राण निकल गये। कंस भ्राता कंक न्यग्रोध आदि रथ ले. दौड़े, बोलते

धनुष के तोड़ने के पश्चात् लोगों के समक्ष
प्रत्येक क्रिया के साथ मिले
चक्रधार नारायण को अपने नेत्रों से
साक्षात् देखता था। अतः उसे दुःस्वप्न
रूप की प्राप्ति हुई (भा: १०-४४-३९)।
उसके बाद कंस के आठ छोटे भाइयों
को भी मार डाला (भा. १०-४४-४१)
और उस [illegible] का अपना ता था (भा. १०-
४५-१२)

(अ) उग्रसेन जी को यादवों का अधिपति
बनाया — (भा. १०-४५-[illegible])
(ब) सान्दीपनी (अपने गुरु) पुत्र को यमपुरी
से फिर लाकर दिया (भा. १०. [illegible] ४६)
(स) पाञ्चजन्य शंख — समुद्र के अन्दर
पञ्चजन असुर को मारकर प्राप्त किया
(भा. १०. ४५-४२)

विवाह - दोनों ही अवतारों में लक्ष्मीजी और भगवान का पुनर्मिलन शक्ति (भवानी) की पूजा हेतु जाते समय नगर देखने आये व लक्ष्मी के पिता के उद्यान में होता है (रा. १-२२८) (भा. १०-५३-५७)

(२) एकपत्नीव्रत - मूल में। जानकीजी से विवाह। पिता जनक ने कन्यादान किया (रा. १-३२४)

(३) अष्ट पटरानियाँ :- (भा. १०-८३-८ से २९)

(क) रुक्मिणी जी - विदर्भ नरेश भीष्मक तनया का हरण किया गया और युद्ध हुआ (भा. १०-५३ से ५४)

(ख) सत्यभामा जी - पिता सत्राजित ने विधिपूर्वक कन्यादान दिया - (भा. १०-५६-४४)

(ग) जाम्बवती - स्यमन्तक मणि के लिये ऋक्षराज जाम्बवान से अट्ठाइस दिन तक युद्ध हुआ। पिता जाम्बवान ने प्रभु को पहचान कर जाम्बवती अर्पित की (भा. १०-५६-२८ से ३२)

(घ) कालिन्दी - भगवान सूर्य की पुत्री ने श्रीकृष्ण से विवाह के लिये घोर तप किया - प्रभु ने पाकर विवाह किया। (भा. १०-५८-२० से २९)

(४) मित्रविन्दा - हरण किया (भा. १०-५८-३१)
(५) सत्या - कौशलनरेश नग्नजित् की प्रतिज्ञा पूरी की जाने पर जिसने अपनी पुत्री सत्या श्री कृष्ण को दे दी (भा. १०-५८-५५)
(६) भद्रा - जिसे श्री कृष्ण को सौंप दी भाई ने स्वयं ही दिया (भा-१०-५८-५६)
(७) लक्ष्मणा - मद्र राज कन्या लक्ष्मणा को स्वयंवर में मत्स्य भेद कर प्राप्त किया - लक्ष्मणा ने माला डाली (भा. १०-५८-५७ एवं ८३ श्लो-२९)

भौमासुर को मार कर उसके द्वारा बन्दी बनायी गयी १६१०० राजकन्याओं को मुक्त किया। तब वे सभी उनकी सुन्दरता पर मुग्ध हो सबने [illegible] उन्हें मन ही मन पति स्वीकार किया (भा. १०-५९-३५) (द्वारकाधीश श्री कृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ थी (भा. १०-५९-४३ एवं १०-६०-२४)

(२) श्री राम के राज्य में सारी प्रजा ही एकपत्नीव्रत थी " एक नारि व्रत रत सब झारी " (७-२२)

संतान —

(२) श्री राम और उनके भाइयों को दो दो पुत्र हुए — इस प्रकार उन्होंने छोटे छोटे परिवार द्वारा परिवार नियोजन के सिद्धान्त का अपूर्व रूप प्रस्तुत किया।
दुइ सुत सुंदर सीताँ जाए।
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे (७-२५)

(३) श्री कृष्ण की १६१०८ रानियों में से प्रत्येक के दस दस पुत्र थे (भा. १०-९०-३० श्लोक ३३) एवं प्रत्येक रानी के एक एक कन्या भी हुई (भा. १०-९०-३४)

रथ

(२) रावण से युद्ध के लिये इन्द्र ने मातलि सारथी के साथ अपना दिव्य रथ श्री राम के लिये भेजा (रा० ६-८८)

(३) जब संध्या से युद्ध प्रारम्भ होने के पहले आकाश से दो रथ उतरे एक कृष्ण के सारथी दारुक को साथ ले श्री कृष्ण के लिये और दुसरा बलराम जी

के लिये और इसी समय उनके सनातन दिव्य शस्त्र भी वहाँ उपस्थित हो गये (भा० १०-५०-११, १२, १४, १५)

अस्त्र शस्त्र

(२) जनकपुर में धनुष यज्ञ स्थल में परशुरामजी के हाथ से विष्णु का धनुष श्री राम के हाथ में अपने आप ही चला गया जिससे परशुरामजी को अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

"राम रमापति कर धनु लेहु।
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ
परसुराम मन बिसमय भयऊ॥ (१-२८४)

(वा० बालकांड-७६-श्लोक ४) श्री राम ने अपनी वैष्णवी शक्ति को भी परशुरामजी से वापस ले लिया॥

(३) अन्यान्य सनातन दिव्य अस्त्रों के साथ विष्णु का शार्ङ्ग धनुष भी उपस्थित था (भा०-१०-५०-२३)

सुदर्शन चक्र—

(१) श्री राम ने सुदर्शन चक्र का व्यवहार कभी नहीं किया।

(२) श्री कृष्ण ने इसका व्यवहार किया:-

(क) पौंड्रक वध—(भा. १०-६६-२१)

(ख) माहेश्वरी कृत्या—(भा० १०-६६-३८)

(ग) मुर (पाँच सिर वाला दैत्य) वध—
(भा. १०. ५९-१०)

(घ) भौमासुर (नरकासुर) वध (१०-५९-२१)

(ङ) बाणासुर वध (१०-६३-३५)

(च) शिशुपाल वध (१०-७४-४३)

बैर-भाव वालों को भी मुक्ति दान में समानता

(१) रामावतार—कुम्भकर्ण (भा० ६-७१)
सुबाहु (भा. ६-१०३)
मारीच (पु. टी. ३-५-२०)

(२) कृष्णावतार—पूतनासुर (भा० १०-१२-३३)
शिशुपाल (भा० १०-७४-४५)
दंतवक्र (भा. १०-७८-१०)

1358

अद्भुत रूप दर्शन

(१) श्री राम द्वारा —

(क) माता कौशल्या को दिखाया (बा. १-२०१)

(ख) खर दूषण की सेना को। (३-२०)

(ग) पुरवासियों को — ...
सानुज मिलि ... एक काल (७-६)
छन महिं सबहि मिले भगवाना (७-६)

(घ) वानर सेना को। पुलकित ... (६-२२)

(ङ) सतीमोह प्रसंग में सती जी को। (१-५४)

(२) सीता जी द्वारा —
सीय सासु प्रति वेष बनाई (२-२५२)

(३) श्री कृष्ण द्वारा —

(क) अक्रूर जी को (भा. १०-३९-४४ से ५५ तक)

(ख) ब्रह्मा मोह प्रसंग में एक वर्ष तक
(१) गोप बालक एवं बछड़े बने रहे
(भा. १०-१३-१८ से ४३ तक)
(२) ब्रह्मा जी को सभी गोप बालक और बछड़े कृष्ण रूप दिखे (भा. १०-१३-४६ से ... तक)

(ग) देवर्षि नारद को ने एक ही समय पृथक् रानी के महलों में भिन्न भिन्न सेवा कराते

~~ब्र~~ श्री कृष्ण को देखना (भा० १०-१४-१३ से ३६)

(घ) सात रूप धारकर सात बैलों को नाथ कर सत्या से विवाह किया (१०-५८-४५)

(ङ) महारास में जितनी गोपियाँ थीं उतने रूप धार कर लीलापूर्वक उनके साथ विहार किया (१०-३३-२०)

उपस्थित मनुष्यों को एक ही प्रभु को ~~...~~ अपनी अपनी रुचि के अनुरूप भिन्न भिन्न रूप में देखना

(२) जनकपुर में धनुष यज्ञ-शाला में पहुँचने पर (रा० १-२४१ से २४२)
जिन्ह कें रही भावना जैसी।...... तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ॥ (१-२४१ से २४२ तक)

(३) मथुरा में मल्ल शाला रंग भूमि में प्रवेश करने पर (भा० १०-४३-१७)

(1400)

जन रंजनता / जनहित

(ए) प्रभु श्रीराम ने श्रीमुख से कहा है:-
"सब कें प्रिय सेवक यह नीती।
मोरें अधिक दास पर प्रीती॥ (७-८६)

(क) वन गमन के समय नदी पार करने के केवट को प्रसन्न
करने को मुस्कराते हुए प्रभु ने चरण
धुलवाये और जल्दी पार उतारने के
लिये निहोरा करते हैं "होत बिलंबु
उतारहि पारू" (२-१०१)

(ख) सबरि के जूठे बेर बारबार बड़ाई करते
हुए खाये "प्रेम सहित प्रभु खाए
बारंबार बखानि" (३-३४)

(ग) मारीच के हृदय में भावना
हिलोर मार रही है "मम पाछें धर
धावत धरें सरासन बान। फिरि फिरि
प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम
आन" (३-२६) भक्त की इच्छापूर्ति
को पूरी करने के लिये प्रभु नंगे पैर
ही उसके पीछे दौड़ते हैं "मायामृग
पाछें सो धावा" (३-२७)। मरने पर
उसकी ज्योति प्रभु में समा जाती है
(रा.च. उ-स्तुति-श्लो-२०)

(२) नारद जी मोह प्रसंग में जब नारद विवाह करने को उत्सुक हो प्रभु के समान सुन्दरता मांगते हैं तब प्रभु कहते हैं "जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार। सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥" (१-१३२) परम हित करते हैं कारण "अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि। ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि॥" (३-४४)

(३) भक्त भरत की प्रसन्नता के लिये प्रभु ने अपनी पादुका भरत को दे दी
"प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं।
सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥" (२-३१६)

(४) वनवास की अवधि व्यतीत होने पर वन में रहते हुए प्रेमी भक्तों के पास आ जाकर प्रभु ने सगुण शरीर का अभिन्न संग दे दे उनकी चिर संचित उत्कट अभिलाषाओं की पूर्ति करते रहे
"जहँ बैठि मुनिगन सहित नित सिय रामु सुजान (२-२३६)।
लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।
(२-२३९)।

(1402)

(४) "राम सदा सेवक रुचि राखी।
वेद पुरान संत सुर साखी॥" (२-२१९)
साधु

(५) (क) छींके से उतार कर कृष्ण जब माखन बानरों को लुटा रहे थे माता को गुस्से में देखकर भयभीत होकर जब भाग चले, यशोदा ने पकड़ कर ~~बांधना~~ ऊखल में बांधना चाहा तब रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ती ही गयी। अंत में थक कर माता आश्चर्य चकित हो गयीं तब प्रभु ने दया वश स्वयं ही बंध गये और यह दिखा दिया कि "मैं भक्तों के वश में हूँ" (१०-९-१९)

(ख) फल बेचने वाली ने जब प्रभु के दोनों हाथ फल से भर दिये तब प्रभु ने उसकी पात्र को उन रत्नों [illegible] कर रत्नों से भर दिया (१०-११-११)

(ग) गोपियों की इच्छा करने के लिये शिशु कृष्ण उनके घरों में जा जा कर विनोद पूर्ण कार्य से उनका मनोरंजन करते — कभी समय के पहले ही बछड़ों को खोल देते, डांट कर हंसने लगते; दूध दही बंदरों को बांट कर खिला देते; कभी बछड़ों की पूंछ पकड़ कर खींचते जाते तब गोपियां इनकी बाल-लीला

को देख कर हंसती; (१०-८) कभी गोपियों
के फुसलाने पर उनके सामने नाचने और
कभी जोर जोर से गाने लगते (१०-११-७)
कभी उनके आज्ञा देने पर पीढ़ा, खड़ाऊं आदि
उठा कर लाते और कभी ताल ठोकने लगते
(१०-११-८)

(४) गोप बालकों के साथ विविध प्रकार की
क्रीड़ा करके उनका मनोरंजन करते (१०-१२-
४ से ४० तक)। वन में उनके साथ भोजन
करते (१०-१४-४६)। वन में उन्हें हंसाते
हुए कूदते, नाचते, गाते, ताल ठोकते, कभी
किसी गोप बालक की गोद में सिर रखकर
सो जाते। (१०-१५-११ से १६)। कभी
आंखमिचौनी खेलते, मेंढक की तरह उछल
कर चलते, कभी बालकों की चोटी पकड़ कर
उस पर झूलते (१०-२०-१५)

(५) कंस की दासी कुब्जा ने जब प्रभु को अंगराग
दे दिया, तब प्रसन्न हो प्रभु ने अपने पैरों से उसके
पंजों को दबा कर अंगुलियों से उसकी ठोड़ी को
उचका कर कुबड़ी सीधी कर सुंदर नारी

(१५८५)

बना डाला (१०-४२-८) और उसकी इच्छा पूरी करने उसके घर कंस को मारने के बाद गये (१०-४८-९)

(च) आततायी कौरवों से एक पाण्डवों की रक्षा एवं सहायता करते रहे - एक वस्त्र द्रौपदी को अनेक प्रकार का वस्त्र रूप दे दुःशासन को थका डाला - लाक्षागृह में उनकी रक्षा की - पात्र में लगे हुये पत्ते को खाकर डकार लेकर दुर्वासा के क्रोध से बचाया, अभिमन्यु सुत की गर्भ में रक्षा की इत्यादि इत्यादि

(छ) दुर्योधन के निमंत्रण को अस्वीकार विदुरानी के घर केलों के छिलके खा खा कर भोग लगाया।

(ज) अपने अस्त्र धारण नहीं करने की प्रतिज्ञा को तोड़ कर भीष्म की प्रतिज्ञा की रक्षा की।

(झ) गुरु के मृत पुत्र को यमलोक से लाकर गुरुदक्षिणा की इच्छा पूरी की (१०-४५-४६)

शरण्य

(२) निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना।। (४-७)

(क) अयोध्या से वनगमन के लिये चल कर श्री राम शृंगवेरपुर सीमा पर आये तब वहां का राजा गुह जो उनका मित्र था उनका सत्कार कर अपने राज्य को अयोध्या के समान समझ कर वहाँ राज्य करने का आग्रह करता है किन्तु श्रीराम वनवासी जीवन की सादगी को बाध्य होने के कारण उसकी इच्छा पूर्ति करने के (रा० २-५०-३७ से ४६ तक) ("कहेहु तात सब सरल सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना।" (२-८८) तब गुह ने रथ लौटा कर पहुँचा दिया और चित्रकूट में पर्णकुटि बनाने पर्यन्त उनके साथ रहा। (२-१०८)

(ख) भाई बालि के भय से त्रसित सुग्रीव से राम ने मित्रता की। बालि का वध कर सुग्रीव को राजा बनाया। सुग्रीव ने सीता की खोज करा कर लंका युद्ध में सहायता की।

1506

(ग) रावण द्वारा लात मारने पर विभीषण प्रभु की शरण में गया। प्रभु ने उसे ही उसे लंकेश कह सम्बोधन किया एवं अपना सखा बनाया। उसने रावण के गुप्त भेदों को बतला कर युद्ध में सेवा की। प्रभु ने रावण को मारकर उसे राज्य दिया। अयोध्या पहुँचने पर प्रभु ने गुरु वशिष्ठ के सम्मुख इन सखाओं द्वारा दी गयी सहायता की भूरि भूरि प्रशंसा की "ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे।।" (7-8)

(3) महाभारत युद्ध भूमि में श्री कृष्ण प्रभु ने सखा अर्जुन के सारथी बने रहे एवं अनेक प्रकार की विपत्तियों से उसकी रक्षा की।

(ख) बाल सखा सुदामा अत्यन्त दरिद्र था। पत्नी से प्रेरित हो कर प्रभु के दर्शनार्थ द्वारका पहुँचा। प्रभु ने उसके चरणों को चरणोदक ही से पखराया। रुक्मिणी जी चँवर डुलाने लगी प्रभु ने पूछा को लिये क्या भेंट लाये हैं

संकोचवश सुदामा जी ने मुख नीचा कर लिया। चिवड़े में बंधे हुए चिवड़ों को प्रभु ने छीनकर एक मुट्ठी खा कर ज्यों ही दूसरी मुट्ठी खाने के लिये हाथ बढ़ाया रुक्मिणी ने हाथ पकड़ लिया (१०-८१-१०) यद्यपि प्रत्यक्ष में कुछ नहीं दिया पर घर पहुंचने पर देखा इन्द्र के समान वैभव विराज रहा है (१०-८१-२९)

हरि हर युद्ध—

(२) त्रेता में कभी भी भगवान शंकर एवं श्री राम का युद्ध नहीं हुआ लेकिन शिवजी राम चरित्र के प्रेमी श्रोता एवं वक्ता रहे हैं। सती के साथ जाते समय श्री राम को "जय सच्चिदानंद जग पावन" (१-५०) कह कर प्रणाम करते- सीता का रूप धरने के अपराध में सती का परित्याग करते हैं- श्री राम भक्त के समक्ष मनुष्य देह धर कर अवध की गलियों में विचरण करते हैं (१-१९६)। श्री राम लंका प्रवेश के पूर्व रामेश्वर की स्थापना करते हैं,

(1408)

वनप्रवेश के समय केवट से गंगा पार करने के बाद पार्थिव शिव की पूजा करते हैं (२-१०३) श्री मुख के वचन हैं

संकर बिमुख भगति चह मोरी।
सो नारकी मूढ़ मति थोरी। (६-२)

(३) बाणासुर भगवान शंकर का अनन्य भक्त था। पुत्रः कृष्ण-बाणासुर संग्राम है। अपने भक्त बाणासुर का पक्ष लेकर भगवान शंकर ने श्री कृष्ण से घोर युद्ध किया। कृष्ण ने शंकर को मोहित कर बाणासुर से संग्राम करके (१०-६३-२४)। यह प्रसंग बताता है कि अपने भक्त के लिये भगवान सब कुछ करते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध (International war)

(४) जैसा कि श्री राम ने दक्षिण में किष्किंधा और लंका में जाकर युद्ध किया — पश्चिम की ओर शत्रुघ्नजी ने लवणासुर को मारकर मधुपुरी (मथुरा) / विजय—

(भा०९-६४-) और दक्षिण की ओर सिन्धु नदी के तट पर गंधर्वों को मार कर भरत जी ने दो नगर बसाये (वा०७-१०१)।

(२) श्री राम ने अधर्म युद्ध कभी नहीं किया

(३) प्रद्युम्न कुमार ने शम्बरासुर का वध किया (भा०१०-५५) और श्री कृष्ण ने ~~बाणासु~~ बाणासुर से युद्ध किया (भा०१०-६३) ये दोनों ही देश द्वारका से पश्चिम में हैं

(४) मगधराज जरासंध से युद्ध (१७ बार) किया और अन्त में श्री कृष्ण ने मथुरा का त्याग कर द्वारका बसायी तब इनका नाम रणछोड़ पड़ा (भा०१०-५०)

(५) श्री कृष्ण को युद्ध में छल कपट से परहेज नहीं था - इन्हें बड़े-बड़े छलियों में कहा गया है।

(1410)

११ नैतिकता —

श्री तुलसीदास जी युग धर्म का वर्णन करते हुए ऐसा ही कहते हैं

"शुद्ध सत्व समता विज्ञाना।
कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥
सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा।
सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा॥
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस।
द्वापर धर्म हरष भय मानस॥
तामस बहुत रजोगुन थोरा।
कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा॥ (उ.कां.)

त्रेता में सतोगुण ज्यादा मात्रा पर रहे। सुख का भी कुछ प्रभाव था किन्तु द्वापर में सतोगुण बहुत थोड़ा पर रजोगुण विशेष एवं तमोगुण का भी आगमन हो गया था।

② राम राज्य का वर्णन करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं

"बयरु न कर काहू सन कोई।
राम प्रताप बिषमता खोई॥ (उ-२०)

एक बारहि भूल हल सब भाई।
लै सब बन उपवन पुनि दिन आई।। पु-२२
परिखट परम मनोहर नाहा।
तहाँ न पुरुष करहिं असनाना।। पु-२४

(३) सत्राजित नामक यादव ने स्यमन्तक मणि के सम्बन्ध में कृष्ण पर आक्षेप पर चोरी करने का लगाया (१०-५६-११६)

(२) कपट-द्यूत (जुआ) द्वारा पाण्डवों को हराकर एक वस्त्रा भाभी (द्रौपदी) को भरी सभा में उनके पाँचों पतियों की उपस्थिति में नग्न करने की दुःशासन की चेष्टा ~~उसके विकलता की सीमा है~~ एवं दुर्योधन द्वारा द्रौपदी को जांघ पर बैठने का इशारा उसके विकलता की चरम सीमा है।

(४) जाम्बवती पुत्र साम्ब का गर्भवती का वेश बनाकर मुनियों का परिहास देते ~~हुए~~ कश्यप के बेटे राजकुमारों ने पूछा "यह क्या सन्तान उत्पन्न करेगी" (भा. ११-१-१५)

(घ) श्रीकृष्ण के जीवन काल में ही यदुवंशी
मदिरा पीकर प्रभास में लड़कर मारे गये
जब बलराम जी पर भी [illegible] किया
तब श्रीकृष्ण और बलराम जी ने बचे
यदुवंशियों को मार डाला (भा: 11-30-
42 एवं 46) बलराम जी ने योगासन [illegible]
लगाकर समुद्र तट पर शरीर त्याग
किया एवं श्री कृष्ण व्याध के बाण से
स्वरूप में स्थित होने पर
स्वरूप से धाम में चले गये (11-
30-28) (11-30-37) एवं (11-31-6)
बचे हुए स्त्री, बालक, वृद्ध अर्जुन के
साथ इन्द्रप्रस्थ चले गये (11-31-25)
(2) श्री राम के जीवन काल में राजमहल में
विशेष कुछ नहीं हुआ। सरयू तट पर योगासन
लगाकर लक्ष्मण ने शरीर त्याग किया।
बाकी सारे अयोध्यावासी श्री राम के स्व-
रूप में चले जाने के समय उनके साथ
गये संसार को छोड़ गये एवं वानरों
सहित सभी राम जी स्वरूप में प्रवेश
कर गये (वा. 7-110)

पर-राष्ट्र नीति—

(1) अत्याचारी राजाओं को मार कर उसी वंश के उत्तराधिकारी को ही राजा की गद्दी पर बैठाना - दोनों युगों की पर-राष्ट्र नीति का महत्वपूर्ण अंग रहा है और इस का वर्तमान में भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने पूर्वी पाकिस्तान (बंगलादेश) में किया।

(2) किष्किन्धा में बाली को मार कर सुग्रीव को राज्य दिया एवं लंका में रावण को मार कर विभीषण को राजा बनाया।

(3) कंस को मार कर उग्रसेन को राज्य दिया। (भा० १०-४५-१२)

ऋषियों का पुनर्दर्शन—

(4) लंका से अयोध्या वापिस आते समय [illegible]

"कुंभजादि मुनिनायक नाना।
गए रामु सब कें अस्थाना॥ (६-१२०)
तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ॥

(१५।५)

सुन्दर सुदामा, धावक के महाकुलों (दि-१२४)

(३) सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में अनेक देशों से आये हुए वृष्णि वंशियों, नन्दादि गोपों एवं गोपियों से मिले (भा. १०-८२)

नेता के भक्त द्वापर में —

(२) वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्ड सर्ग १०८ श्लोक ३६-३७ में वर्णित हैं — जाम्बवान, द्विविद एवं मयन्द

(३) भागवत में वर्णित हैं
जाम्बवान — १०-५६-३२ एवं
१०-८३-१०
द्विविद — १०-६७-२ चेदकंतिका:
निहतु बर (१०-३६-३५)

दो अंगुल छोटी एवं दो अंगुल दूर

(२) जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजादि मोहि लाग ॥ (काकभुसुंडी जी) (७-७९)

(३) यशोदा द्वारा कृष्ण को बांधने वाली रस्सी दो अंगुल छोटी ही बनी रही (१०-९-१५ से १७)

(1515)

शेषावतार का प्रभु से पहले स्वधाम जाना-

(१) लक्ष्मण जी सरयू तट पर प्राण वायु रोक कर सशरीर स्वधाम गये (वा-७-१०६-१७)

(२) बलराम जी ने समुद्र तट पर योग का आश्रय ले शरीर छोड़ दिया (११-३०-२६)

प्रभु की रानियों का स्वधाम गमन

(१) पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी पृथ्वी को चीर कर निकल कर सिंहासन लिये प्रकट हुईं उसी पर बैठ कर सीता जी सशरीर पृथ्वी में समा गयीं (वा-७-९७-१८ एवं १९-२४)

(२) कृष्ण के जाने के बाद रुक्मिणी आदि पटरानियाँ अग्नि में प्रवेश कर गयीं (११-३१-१९ से २०)

प्रभु का सशरीर स्वधाम गमन-

(१) श्री राम भाइयों सहित सशरीर विष्णु तेज में प्रवेश कर गये (वा. ७-११०-१२)

(२) श्री कृष्ण अकेले ही सशरीर स्वधाम गये (११-३१-६)

हरे राम हरे राम। राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण। कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

(1416)

(अं से. सं-41)

11-382 **मानस में प्रभु दर्शनातुर भक्त**

श्री रामचरित मानस एक अपार सागर है जिसमें भक्ति रूपी अमृत भरा पड़ा है। इसमें अपार कृपा स्वरूप एक एक घाट हैं जिनको हरि सुमरन का अनुकूल स्थल तट रूप है। कुछ ऐसे भक्तों की गाथा अति सूक्ष्म रूप में लिखने का प्रयास किया जा रहा है जो श्री रामदर्शन के लिये अति आतुर रहे हैं:-

(1) महाराज दशरथ- इन्होंने मनुतन में घोर तप करके प्रभु को पुत्र रूप में मांगा था। इस जन्म में उनको अनुभव है कि परब्रह्म ने राम रूप में अवतार लिया है

जो फल लाभ सुनत सुभ होई
मौरे मृद भावा प्रभु सोई।। (1-153)

और जब विश्वामित्र जी ने याचा।

के अत्याचारों से अपने धर्म की रक्षा करने के लिये राम लक्ष्मण को उनसे माँग कर ले जाते हैं तब ~~~~ अपना प्राण लेकर दे दूँ ऐसा दशरथ तैयार हो जाते हैं पर कहते हैं "राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥ (१-२०८)। जब जनक का निमंत्रण जनक के दूत देते हैं तब

"बारि बिलोचन बाँचत पाती।
पुलक गात आई भरि छाती॥
रामु लखनु उर कर बर चीठी।
रहि गए कहत न खाटी मीठी॥ (१-२९०)

जब जनकपुर में विश्वामित्र के साथ दोनों भाई पिता के पास आते हैं तब उन्हें हर्षसिन्धु में डूबते हुए देखा (१-३०७)

सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे।
मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे (१-३०८)

श्री राम दर्शन के लिये इनकी आतुरता बताती है।

जब ये सुनते हैं जानकी प्राप्त होती हैं कि श्री राम वन चले गये तब

(१५-१४)

श्री राम के दर्शनों से आजीवन वंचित रहने की कल्पना ने उन्हें व्याकुल कर दिया और उन्होंने प्राण छोड़ दिये।

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम॥
(२-१५५)

(२) विश्वामित्र जी — ये जानते हैं कि श्री राम परब्रह्म के अवतार हैं। एवं असुरों का नाश करने आये हैं और वहीं निज इच्छा से श्री राम लक्ष्मण को मांगने दशरथ के पास आते हैं

तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा।
प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥
एहूँ मिस देखौं पद जाई।
करि बिनती आनौं दोउ भाई॥
ग्यान बिराग सकल गुन अयना।
सो प्रभु मैं देखब भरि नयना॥
बहु बिधि करत मनोरथ जात लागि नहिं बार
प्रभु दर्शन के लिये बिना रहे आतुर हैं (१-२०६)
राम देखि मुनि देह बिसारी। (१-२०७)